डिस्टैंस ऐजुकेशन विभाग
पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

कक्षा : बी.ए. भाग-3 (हिन्दी) *सैमेस्टर-6*

पत्र : हिन्दी साहित्य *एकांश संख्या : 1*

माध्यम : हिन्दी

पाठ नं.

1.1 : महादेवी वर्मा का गद्य साहित्य

1.2 : रामा रेखाचित्र का परिचय

1.3 : घीसा

1.4 : भक्तिन, चीनी फेरीवाला और सुभ्रदा

Department website : www.pbidde.org

पाठ संख्या : 1.1

महादेवी वर्मा का गद्य साहित्य

जन्म

इनका जन्म उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद नामक नगर में सन् 1901 को हुआ माना जाता है। इनके रेखाचित्रों कें संग्रह **'अतीत के चलचित्र'** के अन्त में 'महादेवीः जीवन-क्रम' शीर्षक के अन्तर्गत आरम्भ में ही यह विरोधाभासी बात लिखी है - 1907 : जन्म के दिन फर्रुखाबाद, उ. प्र. (वास्तव में इनका जन्म-वर्ष 1901 है)।

श्री विश्वभर 'मानव' ने अपनी पुस्तक 'महादेवी की रहस्य-साधना' के 'परिशष्टि' में इनका पहले जीवन-परिचय दिया है फिर इनकी जन्म तिथि के सम्बन्ध में यह स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया है :-

''अभी तक ऐसा प्रसिद्ध है कि महादेवी जी का जन्म 1907 में हुआ। इसके सम्बन्ध में मुझे प्रारम्भ से ही सन्देह था। लेकिन किसी लिखित प्रमाण की प्रतीक्षा में था।'' अतीत के चलचित्र के रामा वाले संस्मरण में उन्होंने लिखा है -हम सब एक दूसरे से दो-दो वर्ष छोटे-बड़े थे। उनकी छोटी बहिन श्यामादेवी का विवाह इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष डॉ. बाबूराम सक्सेना से हुआ। उनकी मृत्यु पर 28 दिसम्बर 1976 के स्थानीय दैनिक 'भारत' में एक सूचना प्रकाशित हुई -

''प्रयाग विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति डॉ. बाबूराम की पत्नी और सुप्रसिद्ध कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा की छोटी बहन श्रीमती श्यामादेवी सक्सेना का 27 दिसम्बर को देहावसान हो गया। श्रीमती सक्सेना की आयु 72 वर्ष की थी।''

इस हिसाब से श्यामा देवी का जन्म 1904 और उनकी बड़ी बहिन महादेवी का सन् 1902 में हुआ।

इस प्रकार सन् 1901 और सन् 1902 में से एक जन्म-वर्ष ही सही प्रतीत होता है।

नामकरण

'रामा' शीर्षक सर्वप्रथम रेखाचित्र में ही महादेवी ने स्वयं लिखा है कि ''बहुत प्रतीक्षा के उपरान्त जब मेरा जन्म हुआ, तब बाबा ने इसे अपनी कुलदेवी दुर्गा का विशेष अनुग्रह समझा और आदर प्रदर्शित करने के लिए फारसी ज्ञान भूलकर एक ऐसा पौराणिक नाम ढूंढ लाए, जिसकी विशालता के सामने कोई मुझे छोटा-मोटा घर का नाम देने का भी साहस न कर सका कहना व्यर्थ है कि नाम का उपयुक्त बनाने के लिए सब बचपन में ही मेरे मस्तिष्क में इतनी विद्या-बुद्धि भरने लगे कि मेरा अबोध मन विद्रोही हो उठा।'' (पृष्ठ 19)

अतः कुलदेवी की बहुत मनौतियों के ही फलस्वरूप इनका जन्म होने के कारण इनके बाबा ने इनका नाम 'महादेवी' रखा था, जिसे अपनी महती सारस्वत-साधना से इन्होंने सार्थक भी कर दिखाया।

इनके पितामह का नाम बाबू बांके बिहारी, पिता का गोबिन्द प्रसाद वर्मा तथा माता का हेमरानी देवी था। इनके पिता की नौकरी शिक्षा विभाग में थी। इनकी माँ ईश्वर और धर्म में गहरी आस्था रखने के कारण भजन-पूजन, व्रतोपवास आदि धार्मिक कृत्य सम्पन्न करती रहती थी। सो, घर के वातावरण से ही इन्हें आस्तिकतावादी संस्कार मिले थे। इनकी छोटी बहिन का नाम श्यामादेवी था और छोटे भाईयों के नाम थे - जगमोहन और मनमोहन।

शैशव से इन्हें घर में ही हिन्दी भाषा के साथ-साथ चित्रकला और संगीतकला की शिक्षा देने की भी व्यवस्था की गई। उर्दू भाषा की पढ़ाई और शिक्षक (मौलवी) दोनों से ही ये भयभीत रहती थी। अन्त में माँ और घरेलू नौकर रामा के प्रयत्न से इन्हें उर्दू पढ़ने से छुट्टी मिली।

शिक्षा और विवाह

इन्दौर के मिशन स्कूल में विधिवत् इनकी आरंभिक शिक्षा पूरी हुई। सन् 1916 में केवल 14 वर्ष की अल्पावस्था में ही इनका विवाह कस्बा नवाबगंज, जिला बरेली के डॉ. स्वरूपनारायण वर्मा के साथ सम्पन्न हुआ था। यह विवाह कदापि इनके मन के अनुकूल न था। सो, अपने पिता को मना कर उनकी स्वीकृति से ये और आगे शिक्षा-प्राप्ति के लिए प्रयाग चली गई। इनके पति डॉ. वर्मा ने भी पुनर्विवाह न किया। दिसम्बर सन् 1966 में उनका स्वर्गवास हो गया।

प्रयाग में महादेवी इण्टर की कक्षा क्रास्थवेट गर्ल्स कॉलेज से पास की और सन् 1932 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से ये संस्कृत विषय की एम.ए. परीक्षा में भी उत्तीर्ण हुई शिक्षा के समापन पर ही इन्हें प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्राचार्या - पदवी पर नियुक्त कर दिया गया। बाद में वे उस कार्य-भार से भी मुक्त हो गई।

डॉ. तारकनाथ बाली के मतानुसार इन्होंने सन् 1933 में ही दर्शन-शास्त्र में एम.ए. की परीक्षा पास कर ली थी। डॉ. बाली द्वारा 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' ग्रन्थ में निर्दिष्ट यह तथ्य सन्दिग्ध प्रतीत होता है।

साहित्य-रचना

सन् 1932 में महादेवी वर्मा को 'चाँद' पत्रिका की सम्पादिका नियुक्त किया गया था। इससे पूर्व अपने छात्र-जीवन से ही ये जो कविताएँ लिखने लगी थी, वे प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में भी छपती थीं। गंगा नदी के तट पर रसूलाबाद में इन्होंने 'साहित्यकार संसद्' नामक एक साहित्यिक संस्था की भी स्थापना की थी।

'जिनके साथ जिया' नामक संस्मरण - पुस्तक 'महादेवी जी के सान्निध्य में' के अन्तर्गत श्री अमृतलाल नागर ने भी लिखा है - ''स्वप्नवादिनी तो वे हैं ही, साथ ही अपने सपनों को साकार करने के प्रति वे बड़ी लगन-हठीली भी हैं। प्रयाग महिला विद्यापीठ इसका प्रमाण है। मूल रूप में निराला जी को महत्व देने के लिए ही उन्होंने 'साहित्यकार-संसद्' की योजना बना डाली और उसे साकार करके ही दम लिया। हिन्दी रंगमंच की पुर्नस्थापना का स्वप्न उन दिनों उनके मनोलोक पर छाया हुआ था।'' (पृष्ठ 60)

महादेवी जी ने साहित्यकार मासिक पत्र (सन् 1955) का सम्पादन भी कुछ वर्षों तक किया था।

विभिन्न साहित्यिक पुरस्कार

महादेवी की गणना 20वीं शताब्दी के प्रसाद, निराला और पन्त जैसे महा-कवियों के साथ की जाती

है। सन् 1934 में 'नीरजा' कविता-संग्रह (जिसमें गीत भी हैं) पर इन्हें सेक्सरिया पुरस्कार देकर सम्मानित किया गया था। इनकी 'आधुनिक कवि' आदि कृतियों के आधार पर हिन्दी साहित्य-सम्मेलन प्रयाग द्वारा सन् 1944 में मंगलाप्रसाद पारितोषिक भी प्रदान किया गया था।

व्यक्तितत्व

श्री अमृतलाल नागर ने अगस्त सन् 1942 के आन्दोलन के सन्दर्भ में लिखा है-अंग्रेज सरकार ने ''भारत छोड़ो'' आन्दोलन को बड़ी बेरहमी से कुचला था। महादेवी जी उन दिनों ग्राम सेवाव्रत धारिणी थी। अपने अनुभव दमन-चक्र से भयभीत दीनहीन किसानों की दशा का वर्णन करते करते एकाएक चुप हो गई, फिर कहने लगी हमारा आन्दोलन अब शायद अनेक वर्षों तक अपनी शक्ति न पा सकेगा।'' (जिनके साथ जिया, पृष्ठ 58)

श्री विश्म्भर मानव 'महादेवी की रहस्य-साधना' पुस्तक के 'परिशिष्ट' में लिखते हैं - ''महादेवी जी का व्यक्तित्व सौम्य और प्रभावशाली है। जैसे अंग्रेज़ी में सरोजिनी नायडू, वैसे ही हिन्दी में इनकी गणना देश के श्रेष्ठतम वक्ताओं में होती है। इनमें गंभीर भावुकता और प्रखर बौद्धिकता को ऐसा संयोग पाया जाता है कि चकित रह जाना पड़ता है। उन लोगों की बात यदि छोड़ भी दें, जो इनसे उपकृत होने के कारण इनकी प्रशंसा करने के लिए विवश-से हैं, तब भी अपने लेखों में डॉ. नगेन्द्र ने इन्हें 'शारदा की प्रतिमा' दिनकर ने 'अशोकवासिनी सीता', भगवतीचरण वर्मा ने 'साहित्य की सम्राज्ञी' तथा पन्त ने 'महाकाव्य की उदात्त पात्री' कहा है। इससे पता चलता है कि इनके व्यक्तित्व में निश्चितरूप से कुछ ऐसा असाधारण है, जो इनके सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति को अभिभूत करता है।''

साहित्यिक साधना के साथ ही ये सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में अपनी जागरुकता का परिचय निरन्तर देती रही हैं। बंगाल के अकाल के समय 'बंग-दर्शन' (सन् 1943) तथा भारत की उत्तरी सीमा पर चीन के आक्रमण-काल में 'हिमालय' (सन् 1963) का सम्पादन करके इन्होंने अपने दृढ़ और तेजस्वी व्यक्तित्व का परिचय दिया है।

आगे भी 'मानव' जी ने उनके जीवन-काल में यह प्रतिक्रिया भी व्यक्त की थी ''महादेवी जी ने इलाहाबाद की अशोक नगर कालोनी में अपना एक भव्य बंगला बनवा लिया है और नौकर-चाकरों के साथ आजकल वे उसी में रह रही हैं। इस बंगले के विस्तृत रम्य उद्यान और कमल-पत्र से भरे कुण्ड को देख कर ही उनके प्रकृति-प्रेम का पता चल जाता है। उनका एक दूसरा बंगला नैनीताल जिले के रामगढ़ स्थान में हैं, जहाँ वे गर्मी की छुट्टियाँ बिताने जाती हैं। वे वैभवशाली ढंग से रहती हैं और स्वभाव से बड़ी अतिथि-परायण हैं। देश-विदेश के विद्वान् उनके स्थान पर ही उनसे मिलने आते रहते हैं। उन्हें बिल्ली, खरगोश, मोर और कुत्ते पालने का भी थोड़ा शौक है। निर्धन और असहाय व्यक्तियों की भी वे कुछ न कुछ सहायता बराबर करती रहती हैं। इस प्रकार राजसी और सात्त्विक भाव की उनके स्वभाव में सामान रूप से प्रबलता पाई जाती है।'' (पृष्ठ 171)

श्री अमृतलाल नागर ने महादेवी के हँसमुख स्वभाव के सम्बन्ध में लिखा है- 'महादेवी जी की हँसी। ऐसा लगता था कि जैसे उनके साथ-साथ उनके भीतर वाली कोई शक्ति उनके हँसने से होड़ ले रही हो। हम लोग आम तौर पर फुहारे की ऊपरी खिलखिलाहट को देखकर ही प्रसन्न होते हैं, उसके स्त्रोत का उल्लासमय वेग नहीं देखते। गीत में शब्द और राग दोनों ही की अपनी अपनी महिमा भी है। भले ही गायक

के मधुर कण्ठ रूपी व्यक्तित्व के प्रभाव वे एकरूप होकर झलके और उस प्रभाव की महिमा अन्नय हो।'' (पुस्तक जिनके साथ जिया, संस्मरण महादेवी जी के सान्निध्य में पृष्ठ 52)

उपाधियाँ और अभिनन्दन ग्रन्थ

भारत की स्वतन्त्रता-प्राप्ति के अनन्तर महादेवी जी सन् 1952 में उत्तर प्रदेश विधान परिषद् की सदस्या मनोनीत हुई थी। सन् 1956 में काँग्रेस सरकार ने इन्हें 'पद्मभूषण' की उपाधि से सम्मानित किया था। दो अभिनन्दन-ग्रन्थ भी इन्हें भेंट किए गए थे, जिनके नाम ये हैं - 1. महादेवी अभिनन्दन ग्रन्थ (सन् 1964) और 2 महादेवी संस्मरण-ग्रन्थ (सन् 1967) में इन्हें विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन द्वारा डी. लिट् की उपाधि से विभूषित किया गया था।

इनके अतिरिक्त 'स्मृति की रेखाएँ' पर इन्हें द्विवेदी-पदक प्रदान किया गया था। सन् 1952 में ये दिल्ली में स्थापित साहित्य अकादमी की संस्थापक सदस्य के लिए चुनी गई थी। प्रयाग में इन्होंने ही नाट्य-संस्था रंगवाणी की स्थापना की थी।

सन् 1963 में दिल्ली के लेखिका-संघ की ओर से तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन् द्वारा इनका अभिनन्दन किया गया था।

सन् 1966 में षष्ठि-प्रवेश के उपलक्ष्य में साहित्यकारों की ओर से कविवर सुमित्रानन्दन पन्त ने इन्हें एक संस्मरण-ग्रन्थ भेंट किया था।

सन् 1976 में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा इन्हें 15 हजार रुपये का विशेष साहित्य-पुरस्कार प्रदान किया गया।

सन् 1966 में कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल, सन् 1980 में दिल्ली विश्वविद्यालय और सन् 1984 में बनारस हिन्दी विश्वविद्यालय, बनारस-तीनों के द्वारा ही इन्हें डी.लिट् की सर्वोच्च उपाधि देकर सम्मानित किया गया।

इसके अतिरिक्त बिहार सरकार द्वारा भी ये विशेष रूप से सम्मानित की गई थीं। उत्तर-प्रदेश हिन्दी संस्थान (लखनऊ) द्वारा सन् 1982 में इन्हें प्रथम 'भारत भारती' पुरस्कार प्रदान किया गया।

सन् 1983 में भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी ने 'यामा' और 'दीपशिखा' काव्य-कृतियों के लिए इन्हें डेढ़ लाख रुपये का पुरस्कार देकर सम्मानित किया था।

इनका स्वर्गवास 12 सितम्बर सन् 1987 को हुआ। मरणोपरान्त इन्हें भारत सरकार ने सन् 1988 में 'पदमविभूषण' उपाधि देकर सम्मानित किया था।

डॉ. गंगाप्रसाद पाण्डेय की पुस्तक 'महीयसी महादेवी' से ये अधिकतर उपाधियाँ और पुरस्कार सूचनार्थ उद्धृत किए गए हैं।

आत्म सम्पर्ण की प्रवृत्ति

महादेवी जी के व्यक्तित्व और काव्य, निबन्ध आदि में उनके प्रकाशन के सम्बन्ध में यह अभिमत व्यक्त किया था -

''उनमें आत्म समर्पण तथा आत्मपीड़न अत्यधिक है यानी कहीं भी उन्होंने अपने को उभार कर नहीं रखा है। और वैसे अपने सिवा और किसी के भावों की बात भी कहाँ की है?'' (पुस्तक 'महादेवी की रहस्य-साधना', अध्याय 'समाधान' , पृष्ठ 161)

श्री विश्म्भर 'मानव' ने इस आपत्ति को परस्पर विरोधाभासी माना है और ये विचार व्यक्त किए हैं- ''महादेवी जी ने स्वयं कहा है : मेरा गीत मेरा आत्म-निवेदन मात्र है। इतना होते हुए भी प्रेम में व्यक्तित्व की रक्षा पर उन्होने बहुत बल दिया है। उनका काव्य विषम भाव से सम भाव की ओर बढ़ा है। कहने का तात्पर्य यह है कि उनके काव्य में प्रेम का प्रदर्शन जितना प्रेमिका की ओर से है, उतना प्रणयी की ओर से नहीं। दूसरा पक्ष प्रायः उदासीन है। आध्यत्मिक काव्य में यही स्वाभाविक लगता है। आत्मसमर्पण की स्थिति उनके काव्य में नहीं आई, लेकिन आत्मनिवेदन हुआ, तो आत्म-समर्पण भी होगा, यह निश्चित है। विरह-जीवन में आया है, तो मिलन और एकाकार का दिन भी आयेगा, इसमें सन्देह करने का स्थान नहीं।'' (वही, वही)

कवयित्री ने आत्मा-परमात्मा के इसी मिलन के आशावादी संकेत कुछेक स्थलों पर प्रतीकगर्भित किए हैं - यथा

1. 'पार से अज्ञात वासन्ती दिवस-रथ चल चुका है।
2. शेष यामा यामिनी मेरा निकट निर्वाण।

डॉ. माचवे के अभिमत पर प्रश्न-चिह्न लगाते हुए पूर्वोवत पुस्तक में श्री विश्म्भर मानव आगे लिखते हैं -

''इस प्रसंग में 'आत्मपीड़न' शब्द का प्रयोग आपत्तिजनक है। इस शब्द का प्रयोग श्रीमती शची रानी गुर्टू ने भी किया है। पता नहीं यह शब्द आप दोनों में से किससे लिया है? कुछ भी हो, पर दोनों में से तथ्य का ग्रहण किसी ने भी नहीं किया। भला जहाँ आत्मसमर्पण हो, वहाँ आत्मपीड़न कहाँ से आता है? प्यार में आत्म समर्पण की भावना का सीधा अर्थ तो यह है कि वह अन्तर की प्रेरणा और भीतर की उमंग से उमड़ कर ही आया है।''

हमें तो महादेवी जी के काव्य में उनका व्यक्तित्व बहुत मुखरित लगता है। (वही, पृष्ठ 161)

आगे मानव जी का ही निष्कर्ष है -

''पता नहीं, यह बात आप (डॉ. प्रभाकर माचवे) ने कैसे कही है कि उन्होंने अपने को उभारकर नहीं रखा है। यह काव्य व्यक्तिवादी है, इसमें सन्देह नहीं, पर इस व्यक्तिवाद की भूमि बड़ी व्यापक है। महादेवी जी अपनी आत्मा की बात कहती हैं, तो आपकी आत्मा की बात भी कहती हैं। भक्तों और रहस्यवादियों दोनों के काव्य में लोक-कल्याण के तत्त्व निहित हैं, इस बात को झुठलाया नहीं जा सकता, इस सत्य से मुख नहीं मोड़ा जा सकता।'' (पृष्ठ 162)।

गद्य-पद्य में अभिव्यक्तिगत अन्तर्विरोध

महादेवी जी को जीवन में कुछेक कटु अनुभव तथा पति डॉ. स्वरूपनारायण वर्मा से चिरवियोग आदि हुए थे, तभी तो वे रहस्यवादी भावना की ओर उन्मुख हुईं, अन्यथा वे भी प्रसाद, पन्त, निराला जैसे अपने समकालीन कवियों के ही समान प्रकृति, देश, प्रेंम-भाव आदि से जुड़ी कविताएँ रचने की ओर प्रवृत्त हो सकती थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि रहस्य क्षेत्र की दुःखानुभूति की प्रेरणा के पीछे उनकी निजी जीवन की ही स्वानुभूतियाँ रही होगी।

इस काव्यगत व्यक्तित्व-प्रक्षेपण से विपरीत 'रश्मि' गीत संग्रह की भूमिका में महादेवी ने स्वयं घोषित किया था -

'संसार साधारणतः जिसे दुःख और अभाव के नाम से जानता है, वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है। उस पर पर्थिव दुःख की छाया नही पड़ी। कदाचित् यह (दुःख की अभिव्यक्ति) उसकी प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।'' (पुस्तक 'महादेवी की रहस्य-साधना', उद्धृरत मत, पृष्ठ 11)।

इस स्वीकारोक्ति के विपरित महादेवी ने 'श्रृंखला की कड़ियाँ', 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखायें' में उन्होंने एक भारतीय नारी की आर्थिक गृहस्थ्य, धार्मिक, रानीतिक और सामाजिक स्थिति का जो चित्रण किया है, उसमें उनके निजी जीवनुभवों की परोक्ष अभिव्यक्ति कुछ-न-कुछ तो अवश्य हुई है।

'अतीत के चलचित्र के अन्तिम संस्मरण में महादेवी ने स्वयमेव ये शब्द लिखे हैं, जो उनकी पूर्वोक्त घोषणा के विपरीत बैठते हैं -

1. समता के धरातल पर सुख-दुःख का मुक्त आदान-प्रदान यदि मित्रता की परिभाषा मानी जाये, तो मेरे पास मित्र का अभाव है।

2. रहा दुःख का प्रकटीकरण - सो, उसका लेशमात्र भी भार बनाकर किसी को देना मुझे अच्छा नहीं लगता।

3. पढ़ना समाप्त करते ही मैंने स्वयं अनेक विद्यार्थियों की चिन्ता करने का कर्त्तव्य स्वीकार कर लिया, अतः मुझे कर खिलाने वाले व्यक्तियों का अभाव ही रहा है।

निजी संस्करणों की पुस्तक का यह संस्करण 28 अगस्त सन् 1939 को लिखा गया था, जब वे 37 वर्ष की अवस्था की थीं।

अन्त में, श्री विश्वभर मानव के इस निष्कर्ष से सहमत हुआ जा सकता है कि-

''दुःख में दुर्बल व्यक्ति आत्महत्या करता है मध्य कोटि का अकर्मण्य हो जाता है या मदिरा पीता है और यही चोट जब व्यक्ति को घायल करती हे तो वह स्रष्टा बन जाता है।'' (महादेवी की रहस्य-साधना, पृष्ठ 14)

इसी भाव को उर्दू के प्रसिद्ध कथाकार ने यों वाणी प्रदान की है - ''जिस तरह साज़ के तारों को छेड़े बगैर कोई नगमा पैदा नहीं हो सकता, उसी तरह अपने जिगर पर चोट खाए बग़ैर कोई आर्टिस्ट फ़नकार नहीं हो सकता।''

महादेवी भी ऐसी कवयित्री, चित्रकर्त्री और संगीतज्ञा थीं।

लौकिक प्रेम के प्रकाशन के आरोप का खण्डन

महादेवी जी ने अपनी रहस्यवादी काव्य-रचनाओं में कुछ ऐसी पंक्तियाँ भी लिखी हैं, जिन्हें आधार बनाकर उनके आलोचकों ने उनके द्वारा अभिव्यक्त प्रेम-भाव का आलम्बन अलौकिक ईश्वर न मानकर कोई लौकिक प्रेमी ही माना है, जोकि निपट मिथ्यारोप ही है। कुछ पंक्तियाँ ये हैं -

'मेरे प्रियतम को भाता है तम के परदों में आना,
हे नभ की दीपावलियों ! तुम पल भर को बुझ जाना!'

आलोचको ने उपहास करते हुए पूछा है कि यह कैसा प्रियतम है, जिसे दिन के प्रकाश की अपेक्षा तम के परदों में ही आना भाता है।

महादेवी जी ने ऐसे निन्दकों को गीत-पंक्तियों में ही विनीत भाव से उत्तर देकर मौन करा दिया था।

1. कैसे कहती हो सपना है
अलि उस मूक मिलन की बात?
भरे हुए अब तक फूलों में
मेरे आँसू उनके हास।' (गीत-संग्रह 'नीहार')

2. 'जो न प्रिय पहचान पाती,
दौड़ती क्यों प्रति शिरा में प्यास विद्युत-सी तरल बन,
क्यों अचेतन रोम पाते चिर व्यथामय सजग जीवन !

3. 'प्रिय चिरन्तन है सजनि
क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं।

अतः निश्चित रूप से महादेवी का प्रियतम चिरन्तन ईश्वर ही है और उनकी रहस्यानुभूतियाँ उनके निश्छल और पावन हृदय की ही अभिव्यक्तियाँ कही जाएँगी?

कृतित्व

श्री विश्म्भर 'मानव' ने सन् 1975 तक प्रकाशित महादेवी के ग्रन्थों की यह सूची प्रस्तुत की थी -

(1) नीहार सन् 1930, (2) रश्मि 1932, (3) नीरजा 1934, (4) सांध्यगीत 1936, (5) अतीत के चलचित्र 1941, (6) श्रृंखला की कड़ियाँ 1942, (7) दीपशिखा 1942, (8) स्मृति की रेखाएँ 1943, (9) साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध 1943, (10) क्षणदा 1956, (11) पथ के साथी 1956, (12) सप्तपर्णा (अनुवाद) 1957, (13) संकल्पिता 1968, (14) मेरा परिवार (1964), (15) संभाषण 1975, (16) आधुनिक कवि (विभिन्न कविताओं-गीतों का संकलन) , (17) महादेवी का विवेचानात्मक गद्य, (18) हिमालय (सम्पादित) 1963.

पाठ संख्या : 1.2

'रामा' रेखाचित्र का सारांश

प्रश्न : महादेवी जी की संस्मरण-कथा या रेखाचित्र का सारांश लिखें।

परिचय

सन् 1941 में पहली बार महादेवी वर्मा की पुस्तक 'अतीत के चलचित्र' का प्रकाशन हुआ था। इसे उन्होंने स्वयं 'संस्मरण-कथाओं' का नाम दिया है। पुस्तक 'अतीत के चलचित्र के आरम्भ में पुस्तक की भूमिका 'अपनी बात' के अन्त में वे स्वयमेव स्वीकार करती हैं :-

प्रस्तुत संग्रह में ग्यारह संस्मरण-कथाएँ शामिल की जा सकती हैं। उनसे पाठकों का सस्ता मनोरंजन हो सके, ऐसी कामना करके मैं इन क्षत-विक्षत जीवनों को खिलौनों की हाट में नहीं रचना चाहती। यदि इन अधूरी रेखाओं और धुंधले रंगों की समष्टि में किसी को अपनी छाया की एक रेखा भी मिल सके, तो यह सफल है अथवा अपनी स्मृति की सुरक्षित सीमा से इसे बाहर लाकर मैंने अन्याय किया है।''

यहाँ विदुषी लेखिका के कहने का आशय मात्र इतना है कि निम्न वर्ग से सम्बन्धित दीन-हीन नर-नारियों पर आधारित इन रेखाचित्रों में यदि पाठक सस्ते मनोरंजन के स्थान पर निजी जीवन, व्यक्तित्व, स्थितियों, मनोभावों और अनुभवों की थोड़ी-सी छाया भी देख लेंगे, तो वे संस्मरणों पर आधारित अपनी इस पुस्तक की रचना को सार्थक और सफल मानेंगी अन्यथा यही समझेंगी कि उन्होंने अपने स्मृति-कक्ष से बाहर लाकर पाठक-संसार के सामने रखकर एक प्रकार से अन्याय ही किया है।

अतीत के चलचित्र के इन रेखाचित्रों के विषय में महादेवी जी की यह भी स्वीकारोक्ति है कि-

'इन स्मृति-चित्रों में मेरा जीवन भी आ गया है। यह स्वाभाविक भी था। आगे काव्यात्मक भाषा में जीवन और जगत् से एक दृष्टान्त देती हुई वे कहती हैं - ''अन्धेरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश की धुंधली या उजली परिधि में लाकर ही देख पाते है, संसार उसके बाहर तो वे उन्नत अंधकार के अंश हैं, वह बाहर रुपांतरित हो जायेगा।''

विषय और भाषा-शैली

लेखिका द्वारा कुल 11 रेखाचित्र इस पुस्तक में संकलित हैं, जिनमें 'रामा' सर्वप्रथम रचना है उसमें निबन्ध, संस्मरण और रेखाचित्र तीन के ही वस्तु और शिल्प-विषयक तत्व मिलते हैं, जो इस प्रकार हैं :-

1. किसी व्यक्ति (नर-नारी) का संक्षिप्त जीवन-वृत।
2. उस व्यक्तित्व के जीवन की प्रमुख घटनाओं का मार्मिक वर्णन।
3. उस व्यक्ति के साथ निजी सम्बन्ध का विवेचन।
4. उस व्यक्ति का एक रेखाचित्र प्रस्तुत करना।
5. रेखाचित्र के उस नायक के स्वभावगत गुण-दोषों का बखान।
6. उस व्यक्तित्व के प्रति अपनी समूची करुणा, संवेदनशीलता, निःस्वार्थता आदि का सख्य

(मैत्री) भाव से प्रकाशन।

7. मानव-मनोविज्ञान का चित्रण।

शिल्प के धरातल पर इन रेखाचित्रों में निबन्धों की-सी सरलता, स्पष्टता, सहजता, धाराप्रवाह, गद्य की शैली, स्थल-स्थल पर हास्य रस से रोचकता का समावेश, कटाक्ष, व्यंग्य, उपालम्भ आदि से कथानायक या नायिका के प्रति भारतीय समाज की उदासीनता और उपेक्षा पर प्रकाश-प्रक्षेपण अधिक भावनापूर्ण काव्यात्मक गद्य (या गद्य-काव्य) की शैली का प्रयोग, पात्रानुकूल निम्नवर्गीय भाषा और कथनों में पूरबी और अन्य लोकभाषागत शब्दों का प्रयोग, रूपक - भाषा, विदाई या किसी की मृत्यु के समय 'शोक' स्थायी भाव की सृष्टि द्वारा करुण रस की योजना, गद्य की समास-शैली और व्यास-शैली का प्रयोग, संस्कृत तत्सम शब्दों के साथ-साथ हिन्दी के तद्‌भव शब्दों का प्रयोग, बालकों और किशोरों की शिक्षा, मानसिक स्तर, अनपढ़ता, निरीहता, भोलेपन, स्तर आदि के अनुरुप सहज एवं स्वाभविक भाषा का प्रयोग, संवादों की पात्रानुकूलता, काव्य की ही भांति उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, व्यतिरेक, श्लेष जैसे शब्दालंकारों और अर्थालंकारों का प्रयोग और संस्मरण-प्रधान रेखाचित्रों में निबन्धों में 'कहानी' और 'निबन्ध दोनों साहित्यिक विधाओं के तत्वों का समावेश, विशेष रूप से कथा-रस की सृष्टि ये इन संस्मरणमूला कथाओं और रेखाचित्रों की कुछ प्रमुख शिल्पगत प्रवृतियाँ हैं।

पाठक और विद्यार्थी इस पुस्तक के प्रत्येक रेखाचित्र में इन सभी विशेषताओं के दर्शन कर सकते हैं। सो, इन्हीं के आधार पर रचना से उदाहरण देते हुए प्रश्नों के उत्तर तैयार कर सकते हैं।

आगे सर्वप्रथम रेखाचित्र 'रामा' का सारांश विस्तार से कुछ प्रमुख और महत्त्वपूर्ण शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा रहा है-

1. 'रामा' नौकर का परिचय

महादेवी जी अपने घरेलू नौकर रामा के अपने घर में आने के समय के बारे में न जानने की बात रचना के आरम्भ में ही कर देती हैं। यहाँ तक कि उनके निजी भाई-बहिन भी घर में उसके आगमन के बारे में कुछ भी विशेष, नहीं जानते हैं। उन्हें तो ऐसा प्रतीत होता है कि उसके काले, गठे और नाटे शरीर के साथ-साथ उसके बड़े-बड़े नखों और सिर पर धरी लम्बी शिखा से उनका सनातन या शाश्वत परिचय रहा है। यह परिचय ठीक वैसा ही है, जैसा कि पिता (बाबू) जी की विविधतापूर्ण मेज़ से परिचय, जिसके नीचे बचपन में छोटे भाई-बहिनों की एक पूरी दुनिया रहा करती थी। उनका रामा से परिचय घर में सदा से दिखने वाले विशाल स्प्रिंगदार पलंग और माता जी के द्वार शंख-घड़ियाल ये पूजे जाने वाले ठाकुर जी जैसा पुराना था। भगवान् का भोग मुख में रख कर सभी बच्चे अत्यन्त एकाग्रचित्तता से घंटी टन-टन की गिनती किया करते थे।

2. बच्चों का नटखटपन और नौकर द्वारा चौकसी

नौकर रामा की हथेली किसी साँप के पेट-सी सफेद थी और अंगुलियों किसी वृक्ष के टेढ़ी-मेढ़ी गाँठदार टहनियों-सी थी। रामा प्रातः मुंह धोने से लेकर संध्या में बच्चों के सोने जाते समय इन्हीं खुरदरे हाथों और अँगुलियों से उन पर अपना नियंन्त्रण बनाता हुआ उनसे लड़ता झगड़ता और उन्हें कोसता रहता था। हां, सोने से पहले उससे बाल-कथा सुनने के लिए अनुरोध करते समय बच्चे उससे युद्ध समाप्त करके सन्धि भी कर लिया करते थे। वह घर के बड़े-बूढ़े के सामान पूरे घर को संभले हुए था। बच्चे स्थूल पैरों की आहट तक से परिचित हो चुके थे। इसका एक मात्र कारण था कि कोई भी नटखटपन

करके भागते समय रामा मानों पंख लगाकर उनके छिपने के ठिकाने तक जा पहुँचता था।

लेखिका के अनुसार केवल गंभीर और प्रशान्त भावप्रवणता की सहायता से ही हम अतीतकालीन स्मृतियों को स्पष्ट रूप से दुहरा सकते हैं, इसके विपरीत तर्कशीलता द्वारा हमें उनकी उपयोगिता कदापि प्रतीत नहीं होती।

3. रामा का रेखाचित्र

लेखिका के मातानुसार घरेलू नौकर रामा के माथे पर खूब घनी भौंहें थीं और उसकी छोटी-छोटी स्नेहतरल आँखें जब-जब उन्हें स्मरण आया करती हैं। उसकी अनगढ़ और मोटी नाक किसी थके और झुँझलाएँ हुए शिल्पी की-सी रचना प्रतीत होती थी। उसके मोटे नथुने फैले रहते थे, अधर सदैव मुक्त हंसी से फूले रहते थे और सफेद दन्त-पंक्ति प्रायः काले पत्थर की प्याली में दही की स्मृति दिलाती थी। यद्यपि उसके सिर के केश आधे इंच से भी कम थे, तथापि घर के बच्चे (जिनमें लेखिका भी थी) हाथ में कैंची लेकर उसकी लम्बी शिखा भी काट कर छोटी करने के प्रयास में इसलिए कभी भी सफल न हो सके, क्योंकि उस शिखा का स्वामी न तो उनके जागते हुए कभी स्वयं सोया था और न ही उसके जागते हुए वह ऐसा 'अच्छा कार्य' (सदनुष्ठान) सम्पन्न करने का साहस जुटा पाते थे। समग्रतः रामा देह से तो कुरूप था, किन्तु उससे अधिक भव्य साथी पाने की कल्पना भी नहीं कर सकते थे।

4. स्वभाव अकृत्रिमता और सहजता,

रामा अपनी दैहिक कुरूपता से पूर्णता अपरिचित ही था। वह केवल एक मिर्जई और घुटनों तक ऊँची धोती धारण किए रहता था। यह और बात है कि उसकी कोठरी में सजावट के सामान के रूप में एक लम्बा कुरता, बंधा हुआ साफा, बुंदेलखण्डी जूते और एक गठीली लाठी व्यर्थ ही धरी रहती थी। बच्चे उसके कुरते की बांहो में लाठी अटका कर अपने खिलौनों के लिए उससे परदा बनाना चाहते थे और उसके साफे की खूँटी से उतार कर उसे अपनी गुड़ियों का हिंडोला बनाने की इच्छा अपने मन में पाले हुए थे। वे उसके बुंदेलखण्डी जूतों को हौज में डालकर अपने गुड्डों को उनमें रख कर उन्हें जल-विहार भी करना चाहते थे। वे इसलिए भी सफल नहीं हो पाते थे, क्योंकि रामा अपनी कोठरी के द्वार पर सदैव ऊँची अर्गला से बन्द रखा करता था।

5. रामा का प्रथम आगमन

लेखिका के मतानुसार बड़े होने पर उन्हें पता चला कि एक दिन दोपहर के समय जब उनकी माँ धूप में बड़िया और पापड़ सुखा रही थी, तब रामा थकी-हारी मुद्रा में आकर आँगन के किवाड़ से सिर टिकाकर बेसुध-सा होकर ये शब्द उच्चारित करता-सा नज़र आया कि - 'ए मताई, ऐ रामा तो भूखन के मारे जो चलो।' बुंदेलखण्ड बोली बोल कर वह लेखिका की माँ के चरणों में लोट गया था। उन्होंने दूध, मिठाई देकर उसकी उस रोज़ की भूख तो बुझाई थी, परन्तु वह उसकी उदरपूर्ति के रोग का स्थायी समाधान न था। उसी के बताने पर पता चला कि वह अपनी सौतेली माँ के अत्याचारों से भाग कर इसी तरह भीख माँगते-माँगते वहां (इन्दौर) तक आ पहुँचा था। इस प्रकार बेठौर-ठिकाने वाला रामा लेखिका की ममता का सहज अधिकारी हो कर वहीं रहने लगा था।

6. गृहस्वामिनी की दरिद्रों के प्रति करुणा और संवेदना

साँझ को लौटकर लेखिका के पिता जी ने हँस कर पत्नी से पूछा कि वह यह किस लोक का जीव अपने घर में ले आई है। लेखिका के अनुसार उनकी वात्सल्यमयी माँ के कारण ही उनका घर

अच्छा-खासा 'चिड़ियाघर'-सा ही दिखता रहता था। कभी दालान में कोई लंगड़ा भिखारी भोजन कर रहा होता, कभी घर के पिछवाड़े में कोई सूरदास अपनी खंजडी बजाकर कोई भजन सुना रहा होता। कभी पड़ौसी बालक माँ जी का दिया हुआ नया कुरता पहनकर आंगन में चौकड़ी भरता नज़र आता, कभी कोई बूढ़ी ब्राह्मणी भण्डार घर के बाहर 'सीधा' गठिया रही दीख पड़ती। पति (लेखिका के पिता) महोदय पत्नी की इस दानशीलता से विरक्ति व्यक्त करने के स्थान पर अधिकतर कुछ-न-कुछ कहकर या उपालम्भ देकर ही आनन्द लिया करते थे। वे पहले रामा को घर में क्षणिक अतिथि भर ही समझे थे, परन्तु माँ ने उन्हें यह निर्णय सुनाया कि - ''मैंने खास अपने लिए इसे नौकर रख लिया है।''

7. रामा के कर्त्तव्यों का निर्धारण

लेखिका की माँ चूंकि स्वयं घर के सभी कामकाज किया करती थी, इसलिए केवल अपने लिए नौकर रखने की बात पर पहले तो बाबू जी को हँसी आनी स्वाभाविक ही थी, किन्तु माँ जी ने मानो एक ही दृष्टि में रामा की हृदयगत सरलता को परख लिया था। पूजा-पाठ और रसोईघर के कामकाज तो माँ उसे सौंप नहीं सकती थी, क्योंकि ये काम तो वे स्वयंमेव करना चाहती थी। यदि उपासना उनकी आत्मा के लिए अनिवार्य थी, तो पति और बच्चों के दैहिक स्वास्थ्य के लिए अपने हाथों भोजन बनाना अत्यन्त आवश्यक। सो, परस्पर दो छोटे-बड़े बच्चों को संभालने का गुरु कर्त्तव्य, उन्होंने ने रामा के जिम्मे सौंपकर निश्चिन्तता की साँस ली।

रामा सवेरे ही पूजा-घर के बर्तन आदि साफ़ करता, फिर बच्चों को नींद से जगा कर उनके हाथ-मुँह धोता। नटखट और हठी बच्चों के मुँह धुलवाने में वह 'दूध बताशा राजा खाय' के मन्त्र का निरन्तर जाप करता रहता था। इसके विपरीत लेखिका को 'राजा' सम्बोधन से पुकारना उसके छोटे भाई को न सहन होता और वह अपनी तोतली बोली में 'र' के स्थान पर 'ल' अक्षर का उच्चारण करते हुए रामा से आपत्ति कर बैठता था - 'लामा इन्हैं कौं लाजा कहते हो?

रामा दोनो भाई-बहनों को अलग से कानों में यह कहकर सन्तुष्ट किए रखता था-'तुमई बड़्डे राजा हौ 'जू नन्हे भइया'।

नन्हा भाई प्रसन्न होकर मंजन दाँतो के स्थान में अधरों पर ही करने लगता था। फिर वह एक को दूसरे की ईर्ष्या से बचाने के लिए बारी-बारी चुपके से मुँह में अंगूर, दांनों में बिस्कुट और अधरों में दूध ा देकर सन्तुष्ट करता रहता था। ऐसा करने से पहले वह कौवे की काली-कठोर चोंच से भय .दिखाकर प्रत्येक की आँखें अवश्य मुंदवा दिया करता था।

8. कर्मठता और श्रमशीलता

रामा ही बच्चों को नहलाते समय कभी उनकी आँखों को साबुन के फेन से बचाता, कभी कानों को सूखा द्वीप बनने से। वे उन्हें भोजन कराते समय भोजन की मात्रा और भोक्ता की सीमा सदैव बनाए रखता। खेल खेलते समय उन्हें कभी हाथी, घोड़े, उड़नखटोले आदि का भी अभाव न अनुभव होने देता। वह उन्हें अपने हाथों को फैला कर सोने से पहले उन्हें थपकता, बाल-कथाएँ भी सुनाता ताकि वे स्वप्न-लोक में सहज ही प्रवेश कर सकें।

इसके विपरीत दशहरे का मेला देखने के बाल-हठ की बात सुन कर वह माँ जी से अनुनय-विनय करके उन्हें अपने साथ ले जाने की अनुमति पा लेता। मार्ग में वह अंगुलि न छोड़ने का निर्देश देते समय कठोरता से कहा करता था-

''उंगरिया जिन छोड़ियो राजा भईया।''

लेखिका का हठ भी कम न था। उसने रामा की उंगुलि छोड़ कर मेला देखने का निश्चय तो पूरा किया, किन्तु खोकर भटक कर थक जाने के बाद अपनी बेचैनी छिपाते हुए एक मिठाई के दुकानदार से यों पूछा - ''क्या तुमने रामा को देखा है। वह खो गया है।'' जब मिठाई वाले ने रामा का हुलिया पूछा, तब लेखिका ने सहज भाव से इतना ही कहा - ''वह बहुत अच्छा है।''

फिर उससे मिठाई पाकर वहीं बैठी रामा की प्रतीक्षा करने लगी। साँझ को रामा को देखते ही उसने कहा - ''तुम इतने बड़े होकर भी खो जाते हो।'' आनन्द के अश्रु आँखों में लाकर रामा उसे लेकर लौटा और उसके बदले स्वयं बड़ों की डाँट-फटकार सही और फिर बच्ची को वात्सल्यापूर्ण थपकियाँ देकर सुलाने का कर्त्तव्य भी पूरा किया।

9. चोरी जैसे कामों से बच्चों की भर्त्सना और नोंक-झोंक

लेखिका के पड़ोस में ठाकुर साहब रहते थे, जिनके घर के साथ उनके घर की छत मिली रहती थी। एक बार बच्चे छतों के मार्ग से उनके घर-आंगन में लगे फूल चुराने गये। जीने में एक कुत्ती ने नन्हें पिल्ले देख कर उन्हीं को चुराने का निश्चय किया। अभी एक पिल्ला उठाया ही था कि कुत्ती ने चिल्लाना आरम्भ किया। पूछने पर बच्चों ने छत की राह से फूल चुराने की बात गृहस्वामी पर प्रकट की और जब उन्होंने फूलों के सम्बन्ध में हंस कर पूछा - लेते क्यों नहीं? तब उन्हें और भी अधिक गंभीर स्वर में यह उत्तर दिया गया - 'अब कुत्ती का पिल्ला चुरायेंगे।'

पिल्ला लेकर लौटने पर रामा ने उनकी इस डकैती का पता लगा लिया और लेखिका के कान उमेठते हुए पूछा था - 'कहो जू कहो जू, किते गये रहे है?'

बाद में बच्ची ने माँ से रामा के द्वारा अपने कान खींच कर टेढ़े और बड़े कर देने की शिकायत की और डॉक्टर बुलवा कर कान ठीक करनवाने और रामा को अंधेरी कोठरी में बन्द करने के लिए भी कहा। रामा को बच्चों से दुर्व्यवहार करने के फलस्वरूप माँ जी से एक मनोवैज्ञानिक उपदेश सुनना पड़ा और लज्जित भी होना पड़ा। संध्या-समय सन्धि के उद्देश्य से बच्चों ने गीत सुनाने के लिए कहा। कण्ठ अच्छा न होने पर भी रामा ने उन्हें ऐसे सिय रघुवीर भरोसे टेक वाला भजन सुनाया। वह केवल उन्हीं को सुनाने के लिए गाया करता था और वे भी केवल उसी के लिए सुना करते थे।

10. कन्याओं की उपेक्षा

स्वयं लेखिका का मत है कि उनके शैशव-काल में भी भारतीय परिवारों में कन्याओं की अभ्यर्थना नहीं होती थी। कन्या का जन्म होने पर उसकी सूचना दबे स्वर में ही दी जाती थी। संकेत करके गाने वालियों और बाजा बजाने वालों को लौटा दिया जाता था। यदि अनचाहे रूप में कन्या रूपी लक्ष्मी घर में आ जाती , तो उसे बैरंग लौटा दिया जाता था। यदि अनचाहे रूप में कन्या रूपी लछमी घर में आ जाती, तो उसे बैरंग लौटा देने के उपाय भी सहज थे। महादेवी के घर में उनसे पूर्व दीर्घकाल तक किसी कन्या का जन्म न होने पर सभी पारिवारिक जन चिन्तित होने लगे थे। महादेवी का जन्म होने पर उनके बाबा ने इसे अपनी कुलदेवी का ही अपने पर विशेष अनुग्रह समझा था। रामा जैसा घरेलू नौकर पाकर ही वे जीवन की सरलता से परिचित हो सकी थी। घर में छोटे-बड़े सभी जन उनकी शास्त्र-ज्ञान की योग्यता से भली-भाँति परिचित थे। छोटी बहन मुन्नी के रुष्ट होने पद वे ही यह पंक्ति गा-सुनाकर उसे मनाने की चेष्टा करती थी - 'रुठी लड़की कौन मनावे, गरज पड़े तब दौड़ी आवै। जब उनका सह शस्त्र-ज्ञान घर में

'महाभारत' का कारण बनता, तब रामा सभी बच्चों के कान में अपना निर्णय सुना कर शीघ्र ही बच्चों में सन्धि करा देता था।

11. मौलवी, संगीत-शिक्षक और ड्राईग मास्टर

खेलने वाली अवस्था में ही महादेवी को उर्दू भाषा पढ़ाने-सिखाने के लिए पहले एक मौलवी नियुक्त किया गया। एक दिन पढ़ने से बचने के लिए लेखिका को एक बड़े झाबे में छिप कर बैठना पड़ा था। उनके और रामा के प्रयत्नों से उन्हें पढ़ने से छुट्टी मिली।

चूंकि ड्राइंग-मास्टर ने उन्हें कभी खेलने से नहीं रोका, इसलिए उनके प्रति उन्हें कोई शिकायत न रही। वे रामा आदि का चित्र बनाने लगी थी।

संगीत ड्राइंग-शिक्षक ने जब पूछो, तो बालिका ने उन्हें बताया कि वे रामा से ही अभी तक संगीत सीखती आई है। शिक्षक के द्वारा कुछ भी सुनाने की बात पर उन्होंने रामा का वही पुराना भजन सुना दिया। फिर भी संगीत-गुरु नारायण महाराज रामा को अपने से बड़ा और योग्य गायक न मान सके। चूंकि महादेवी और दूसरे बच्चे रामा के बिना अपनी माँ के साथ उसके मायके जाने के लिए कभी तैयार न हुए, तभी माँ अकेली ही चली जाती। अब रामा बाबू जी और उनके बच्चों की देखभाल के लिए घर में ही रह जाता था।

12. सेवा-भाव

छोटे भाई को चेचक निकलने पर रामा उसे लेकर घर की ऊपरी मंज़िल में इस प्रकार जाकर रहने लगा, कि उन्हें कभी भी भाई की स्मृति न आई। उसी की अतिरिक्त सावधानी के फलस्वरूप महादेवी चेचक जैसे रोग से बची रही। इन्दौर में प्लेग फैलने पर परिवार शहर से बाहर रहने लगा। तब भी बच्चों को रामा का भरपूर स्नेह मिलता रहा।

एक बार रामा ने उन्हें एक ऐसी वृद्धा की कहानी सुनाई जिसके फूले हुए पैर से स्वयं भगवान् ने एक वीर मेंढक उत्पन्न कर दिया था। तब महादेवी ने सभी से कहा कि ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे कान से भी कहानी वाला मेंढक निकलेगा। उनके कान के पास एक गिल्टी निकल आने पर रामा ही ईंट के गर्म टुकड़े को कपड़े में लपेटकर उनके कान सेकता रहा था। ऐसा करते समय रामा के मुख से देवी, हनुमान, भगवान् जैसे शब्द निकल कर अपनी धार्मिक आस्था का पता देते रहते थे। उसने लेखिका की गिल्टी तो ठीक कर दी, परन्तु स्वयं ज्वरग्रस्त हो गया और उसके भी गिल्टी निकल आई। बहुत रोगी होने पर भी वह उनके स्वस्थ हो जाने से परम सन्तुष्ट था। जब माँ बच्चों के सहित उसकी मिज़ाजपुर्सी के लिए गई, तब उसने बालिका को रोगमुक्त करने के लिए उसका आभार भी व्यक्त किया। रामा स्वस्थ हुआ, तब माँ ने उसे विवाह करके अपने बाल-बच्चों का सुख देखने का भी सुझाव दिया।

इस पर रामा ने अपनी बुंदेलखण्डी बोली में यह कहा -

''बाई की बातें! माये नासपिटे अपनन खौं का करने हैं, मोरे राजा (महादेवी) हरे बने रहें - जेह अपने रामा की नैया पर लगा देहें।'' (पृष्ठ 21)।

13. रामा का विवाह

एक दिन रामा अपनी लाठी, जूता और गुलाबी साफा बाँध कर चला गया। उसके जाने के उपरान्त बच्चों को कल्लू की माँ के कठोर हाथों से बचने के लिए रोज़ नये नये उपाय सोचने पड़ते थे। जाने के कुछ दिन बाद 'राजा भइया', जरा भईया' पुकारते हुए जब रामा घर में घुसा, तो उसके साथ नवविवाहिता

स्त्री भी थी। पत्नी के तन पर लाल धोती का कछौटा लगा हुआ था, हाथों में चूड़े थे और पांवो में पैंजन। उसने घूंघट काढ़ा हुआ था। मुन्नी जब रामा के कुरते को पकड़ कर झूलने लगी, तब उसकी पत्नी ने दो तीक्ष्ण नेत्रों से अपना मूक विरोध व्यक्त किया। आगे चलकर उसी नई ब्याही स्त्री के द्वारा असहयोग करने पर न केवल बाल-क्रीड़ाओं के संसार में मानो सूखा ही पड़ गया, अपितु बच्चों के गुड्डे-गुड़ियों का दम भी उसकी उपस्थिति में घुटने लगा था।

बच्चों ने रामा की पत्नी को लाए जाने पर बाल-गोष्ठी में खुलकर अपना असन्तोष और विद्रोह-भाव प्रकट किया। उसके स्नान के समय नन्हा भाई कभी उसकी धोती लकड़ी से नीचे गिरा देता, कभी उसके चौके में बिस्कुट रख आता। वह अपने को दिए जाने वाले दण्डों का प्रतिरोध भोले रामा से लेती रही। यह देख कर और समझ कर रामा हतबुद्धि और खिन्न मना रहने के बाद विद्रोही भी हो गया। वह समझ ही न पाता था कि वह उस निर्मम और कठोर पत्नी के चरणों में ही अपना सारा समय और स्नेह कैसे न्यौछावर कर सकता है। यदि वह ऐसा करता भी, तो स्वयं कैसे जीवित रह पाता! नई बहू के रूठ कर मायके चले जाने पर रामा का बन्धन-मुक्ति का सुखानुभव हुआ। फिर वह जल-रेखा के समान उसे भुला ही बैठा।

14. रामा की मृत्यु

इसके विपरित माँ जी को रामा द्वारा पत्नी को एक पुराने खिलौने-सा फेंकना अत्यन्त अनुचित प्रतीत हुआ और वह उसे कर्त्तव्य-ज्ञान से जुड़े उपदेश देने लगी। एक करुण विवशता से भरा जीवन जीते हुए रामा अपने घर जाकर पुनः न लौट सका। बहुत दिनों बाद उसके रोगी होने के समाचार पा कर लेखिका की माँ ने उसे रुपये भेजे और आने के लिए भी पत्र लिखा, किन्तु उसे तो बस इतने दिनों के लिए ही उनके साथ अपनी जीवन-यात्रा करनी बंद थी।

15. बच्चों पर वज्रपात

नन्हा भाई उड़ने वाले घोड़े के अभाव में सात समुद्र पार जा नहीं सकता था, मुन्नी अपनी खिलौनानुमा रेल पर चढ़ कर संसार भर का भ्रमण करना चाहती थी और लेखिका अपनी गुड़िया का विवाह सम्पन्न करना था, जोकि पुरोहित और प्रबंधक के अभाव में आगे ही टलता रहा।

16. दिवंगत रामा का स्मरण

रेखाचित्र के अन्त में लेखिका ने अपने कनिष्ठभ्राता का उल्लेख किया है, जो ढाई वर्षो का हो गया था। बिखरे हुए खिलौनों के मध्य उसे बिठला कर वे सभी बच्चे उसे घरेलू नौकर रामा की पूरी कथा सुनाया करते थे। फिर अन्त में उसे यह धमकी भी दिया करते थे कि - 'रामा जब गुलाबी साफा बाँध कर लाठी लिए लौटेगा, तब तुम गड़बड़ न कर सकेंगे।''

रामा ने न लौटाना था और न ही वह लौटा।

आज इतनी बड़ी होने पर लेखिका को अपने शैशव-काल में 'राजा भैया' कहलाने का हठ एक सपना-सा ही प्रतीत होता है। आज सभी बाल-कथाएँ कोरी कल्पना के समान भासित होती हैं और खिलौने की सृष्टि का सौन्दर्य एक भ्रम सरीखा लगता है।

रेखाचित्र के अन्त में स्वयं लेखिका के ही ये शब्द श्रद्धांजलि रूप में रामा के व्यक्तित्व को समेटने में सफल है -

.... ''पर रामा आज भी सत्य है, सुन्दर है और स्मरणीय है। मेरे अतीत में खड़े रामा की विशाल छाया वर्तमान के साथ बढ़ती ही जाती है - निर्वाक, निस्तन्द्र, पर स्नेहतरल।''

1. बापू जी तो उसके अपरुप को देखकर .... दहेली पर सीधा गठियाते मिलती (पृष्ठ 69)

प्रसंग

ये गद्य-पंक्तियाँ महादेवी वर्मा द्वारा लिखित संस्मरण रामा से उद्धृत की गई हैं। जिसे डा० सुधाजितेन्दर ने महादेवी वर्मा का गद्य साहिय के सपापित किया है। इससे पूर्व अपने पति से पूछे बिना ही महादेवी की माँ ने रामा जैसे गंवार और बुंदेलखण्डी बोली बोलने वाले युवक को घर का कामकाज करने के लिए घर के नौकर के रूप में नियुक्त कर लिया था। उसी संध्या में जब पति (महादेवी वर्मा के पिता) घर लौटे, तब उन्होंने लकड़ियाँ रखने की कोठरी के एक कोने में रामा के बड़े-बड़े जूते धरे देखे और दूसरे कोने में नये नौकर की लम्बी लाठी भी रखी देखी। उधर वह रामा नामक नौकर अपने हाथ और मुंह धोकर अपनी नई सेवावृति में विस्मित भाव से लीन होने की चेष्टा और अपने द्वारा करणीय कर्त्तव्यों को समझने में यत्नशील दीख पड़ा। इससे आगे प्रस्तुत गद्यांश में गृहस्वामिनी अर्थात् महादेवी की माँ की परहितवादी भावना के बारे में कुछ विस्तार से बताया गया है।

व्याख्या

महादेवी के पिता जी नवनियुक्त कुरूप और बेढंगे रामा पर दृष्टि पड़ते ही आश्चर्य ये अभिभूत और विमोहित होकर ही रह गए। उन्होंने अपनी पत्नी से परिहासपूर्वक पूछा कि हे धर्मराज जी! आप यह किस लोक का जीव लेकर आ गए हैं? इस पूछताछ के साथ ही लेखिका इस संस्मरण-कथा में स्वयं हस्तक्षेप करती हुई बताती हैं कि उसकी ऐसी सेवाव्रती और धर्मपरायण माँ के कारण उनका घर सदा एक अच्छा खासा 'चिड़ियाघर' ही बना रहता था। उसके पिता जी जब प्रायः घर लौटते तब कभी तो कोई भिक्षुक बाहरी बरामदे में भोजन करता नज़र आता था या फिर कोई अंधा व्यक्ति घर के पिछले द्वार पर छोटे डमरु-सी खंजरी बजाते हुए कोई भजन, पद आदि गाता मिल जाता था। इसी प्रकार आस-पड़ौस में रह जाने वाला कोई निर्धन माँ की कृपा से हमारे घर का ही कोई नया कुरता अपने तन पर धारण किए हुए हमारे ही आंगन में हर्ष से उछलता कूदता नज़र आता था। इसी प्रकार खाने-पीने का सामान रखने वाले भंडार-घर के बाहर उसकी ड्योढ़ी या दहलीज़ पर अनपका अनाज यथा सीधा आटा गठियाते हुए कोई ब्राह्माणी जाती दिखाई देती।

कहने का आशय यह है कि महादेवी की उदारमया माता जी भिक्षुकों, अंधों, बच्चों, ब्राह्माणों आदि को जब तब दान-दक्षिणा देकर उनकी आर्थिक सहायता करके पुण्य लाभ करती रहती थी।

गद्य-सौष्ठव

महादेवी जी ने उद्धृत पंक्तियों में गद्य की व्यास शैली का व्यवहार किया। कथ्य के धरातल पर जहाँ गृहस्वामी (महादेवी के पिता) की परिहासप्रियता झलकती है, वहाँ अपने से बिना पूछे पत्नी द्वारा नौकर रखने, भिखारी, अंधों, बच्चों, ब्राह्माणों को दान आदि देने के कार्यों में हस्तक्षेप करने से पत्नी के प्रति उनके प्रेम-भाव का भी संकेत मिलता है।

भाषा के धरातल पर अपरुप, विस्मय, विमुग्ध, लोक, जीव, धर्मराज, भोजन, भजन, दरिद्र, बालक, वृद्ध, ब्राह्माण जैसे संस्कृत-तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है। माँ, खंजड़ी, घर आदि तद्भव शब्द हैं 'दातान' फारसी संज्ञा पुलिंग शब्द हैं। 'जू (Zoo) अंग्रेज़ी शब्द चिड़ियाघर के अर्थ में है। लंगड़ा,

पिछवाड़ा, पड़ौसन, चौकड़ी हिंदी के देशज शब्द हैं। 'कुरता' तुर्की भाषा का संज्ञा पुलिंग शब्द है।

समग्रतः भाषा भावों की अभिव्यक्ति में पूर्णतः सन्देह है। (पृष्ठ 19)

प्रसंग-ये गद्य-पंक्तियाँ महादेवी वर्मा द्वारा लिखित संस्मरण-कथा 'रामा' से उद्धृत की गई हैं। इनसे पूर्व लेखिका बताती हैं कि उनका बचपन समकालीन बालिकाओं से कुछ भिन्न रहा था, इसीलिए रामा जैसे सीधे-सादे घरेलू नौकर का उनके जीवन में उस अवस्था में विशेष महत्त्व रहा हैं इसके बाद वे कहती हैं कि उस काल में परिवार के सदस्यों द्वारा कन्या के जन्म की इच्छा ही नहीं की जाती थी। आँगन में गाने वालियों द्वारा पहले से बुलवाए गए नौबतें बजाने वाले, परिवार में बूढ़े से लेकर बच्चे तक सभी पुत्र के जन्म की प्रतीक्षा आतुरता से किया करते थे। जैसे ही कन्या के जन्म लेने का समाचार मिलता, वैसे ही घर के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक निराशा का वातावरण छा जाया करता था। बड़ी बूढ़ियाँ संकेत से गाने वालियों को और बड़े-बड़े बाजे वालों को वापस भेज दिया करते थे। यदि कन्या का भार उठाना परिवार की शक्ति से बाहर होता तो उसे बैरंग लौटा देने अर्थात् मार देने की उपाय भी सहज भाव से किये जाते थे। महादेवी के कुल में कई पीढ़ियों से किसी देवी अर्थात् कन्या का जब जन्म नहीं हुआ, तब ठीक वैसे ही चिन्ता होने लगी, जैसे कन्या के बिना में विस्तार से बताती है -

व्याख्या - लेखिका का कथन है कि परिवार के लोगों द्वारा अत्यधिक प्रतीक्षा करने के उपरान्त ही उसका जब जन्म हुआ, तब उसके बाबा ने उसे अपनी कुलदेवी दुर्गा की कृपा का ही फल समझा। सो, देवी के प्रति अपनी श्रद्धा और सम्मान-भावना प्रकट करने के लिए बाबा ने उस नवजात कन्या का फारसी नाम रखने के स्थान पर एक ऐसा पौराणिक नाम खोज लाए, जिसके सामने कोई भी सदस्य कोई घरेलू-सा छोटा-मोटा नाम रखने का साहस ही न जुटा सका। सभी की यह मनोकामना थी कि 'महादेवी' नाम से जैसी विशालता का बोध होता था, ठीक उसी आशा के अनुरूप इस कन्या के मस्तिष्क में विद्या-बुद्धि भरी जाए। ऐसे यत्नज प्रयासों से लेखिका का मन विद्रोह-भाव से भर उठा। वास्तव में इन चेष्टाओं से उसके जीवन में जो कृत्रिमता आरोपित की जा रही थी, उसे दूर करने के लिए ही अनपढ़ नौकर रामा की स्नेहपूर्ण छाया ने लेखिका को जीवन की सहज सरलता से परिचित कराने का जो उपकार किया था, उसमें रंच मात्र भी सन्देह नहीं किया जा सकता।

गद्य-सौन्दर्य

गद्य की इन पंक्तियों में सरलता, स्पष्टता, बोधगमयता और प्रवाहमयता के कारण प्रसादगुण का समावेश हुआ है, साथ ही यहाँ नपे-तुले कम-से-कम शब्दों में गद्य समास-शैली का भी प्रयोग माना जा सकता है। प्रतीक्षा, उपरान्त, जन्म, कुलदेवी, दुर्गा, विशेष, अनुग्रह, आदर, प्रदर्शित, ज्ञान, पौराणिक, नाम, विशालता, साहस, व्यर्थ, उपयुक्त, मस्तिष्क, विद्या-बुद्धि, अबोध, मन, विद्रोही, निरक्षर, स्नेह, छाया, जीवन, सरलता, परिचित, सन्देह शब्द संस्कृत तत्सम हैं। घर बहुत जब मुझे सब बिना -'ये सभी हिन्दी के तद्भव शब्द हैं।

भाषा लेखिका के मनोगत भावों की अभिव्यक्ति में पूर्णतः और सफल रही है। कथ्य के धरातल पर लेखिका ने अपने बाबा के अपने प्रति अपार वात्सल्य के साथ-साथ सभी पारिवारिक सदस्यों की अपने प्रति पूर्वापेक्षाओं के कारण आने वाली कृत्रिमता का भी सच्चा उल्लेख करने में स्पष्टवादिता का ही परिचय दिया है।

पाठ संख्या : 1.3

घीसा

कवयित्री महादेवी वर्मा द्वारा लिखित पुस्तक 'अतीत के चलचित्र' का यह सातवाँ संस्मरण है। शेष संस्मरणों के ही समान यह रचना भी एक चरित्र-प्रधान रेखाचित्र है, जिसमें निबन्ध और संस्मरण दोनों ही साहित्यिक विधाओं के गुण समाहित हैं। इस संस्मरण-कथा की रचना लेखिका ने 17 अगस्त सन् 1936 को की थी।

आगे इस संस्मरण में उल्लिखित दृष्टिबिन्दुओं का सविस्तार अध्ययन कतिपय शीर्षकों के अंगभूत किया जा रहा है-

1. बाल-शिष्य के ग्राम की नारियों की श्रृंगारप्रियता

लेखिका का मत है कि यह बात जान लेना सहज नहीं है कि वर्तमान काल में वह कौन-सी अज्ञात प्रेरणा है, जोकि अतीतकाल की किसी विस्मृत सी कहानी को अपनी पूरी हृदयस्पर्शिता के साथ हमारे सामने पुनः दोहराने लगती है। आज अकारण की एक गाँव का मैला और सहमा-सा नन्हा छात्र स्मरण आ रहा है, जो उसकी जीवन रूपी सरिता के किनारे को अपनी सारी स्नेहिल आर्द्रता से भिगोकर अन्तहीन काल-सागर में चला गया है। कदाचित् इसी कारण लोग झूँसी नामक उस गाँव के खण्डरों से मेरा जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध व्यंग्यपूर्ण स्वर में बताने लगे है। जोकि गंगा के पास बसा है। यही कारण है कि अवकाश में जहाँ दूसरे लोग अपने इष्ट मित्रों से मिलते, उत्सवादि में सम्मिलित होते और आमोद-प्रमोद में ही अपना समय बिताना उपयुक्त समझा करते हैं, वहाँ वह झूँसी के उन खण्डहरों के पास गंगा के किनारे सुखपूर्वक समय बिताना चाहती है।

वहीं जीर्ण-शीर्ण घरों से ग्राम-नारियाँ पीतल, ताँबे और मिट्टी के लाल नये-पुराने घड़े लेकर गंगा-जल भरने के लिए आया करती हैं। उन्हें वह पहचानने लगी है। कोई नारी बूटों वाली लाल धोती पहने होती है, तो कोई सफेद और छेदों से छलनी बनी सी धोती। किसी नारी की सिन्दूर-रेखा असंगत सूर्य-किरणों में चमक रही होती है तो किसी नारी की तेल-रहित सूखी छोटी अलकें उसके मुख को घेरती हुई उसकी उदासी को और भी गहरा रही होती हैं। किसी नारी की गोल और साँवली कलाई पर कच्ची चूड़ियों को नग हीरों-से चमक रहे होते हैं और किसी बाला के निर्बल और काले पहुँचे पर पीली-मैली चूड़ियाँ एक सी प्रतीत होती हैं, मानो किसी काले पत्थर पर मटमैले चन्दन की खिंची रेखाएँ हों। कोई नारी गिलट के कड़ों वाले हाथ घड़े की आड़ में छिपाने की चेष्टा-सी करती नज़र आती है, तो दूसरी कोई नारी सखी से बात करते समय चाँदी के पछेला-कंगन झनझनाती रहती है कभी किसी के कानों में पड़ी तरकी उसकी धोती की ओट से झलक सी दे जाती है और किसी की लम्बी जंजीर से गले और गालों की दूरी कम होती दिखती है। इसी प्रकार किसी के गुदने से गुँदे पैरों में चाँदी के कड़े उसकी दैहिक सुडौलता की ओर ध्यान खींच रहे होते हैं और किसी की सफेद एड़ियों और अँगुलियों द्वारा उभरने वाली स्याही तो पहने हुए राँगे और काँये के कड़ों को मानो लोहे की स्वच्छ बेढ़ियों-सा ही दिखा रही होती हैं।

2. ग्राम-बालाओं की शील-सौन्दर्य का जनाकर्षण

वे ग्राम-युवतियाँ हाथ मुँह धोने के उपरान्त घड़े में पानी भर कर पहले उसे एक ओर रख देती हैं, फिर सिर पर इँडुरी ठीक करती हुई मुस्कान के कई रूप प्रकट करती है मैला, उजला, व्यथापूर्ण, सुखद इत्यादि इसे वे अपने और लेखिका के अनुमानित अन्तर को मुस्कान से पाटना चाहती हैं। उस समय कुछ ग्वाल-बाल अपने किसी गाय-भैंस को या गडरिया अपनी भेड़-बकरी को उस ओर बढ़ते हुए देख कर लौटा ले जाता है। इसी प्रकार गुल्ली-डंडा खेलने वाले बच्चे हों या नगर में दूध बेचने जाते या लौटते हुए ग्वाले, काम पर जाते या घर लौटते मज़दूर हों या अपनी नावें बाँधते-खोलते माँझी 'चुनरी त रँगाउब लाल मजीठी हो' गाते-गाते लेखिका को देखते ही घबरा कर मौन हो जाते हैं। कुछ तथाकथित सभ्य जन लजाकर 'नमस्कार' भी कर देते हैं।

3. गुरु की कर्त्तव्यशीलता

महादेवी के अनुसार पता नहीं, कब उन्हें ग्राम के बालकों को कुछ शिक्षा देकर उन्हें सिखाने-पढ़ाने का ध्यान आया। फिर पदाधिकारी के चुनाव, भव, चंदे आदि की 'अपील' के बिना ही और बगैर कोई औपचारिक समारोह किए वह पीपल के वृक्ष की सघन छाँव तले विद्यार्थियों को एकत्र करके उन्हें पढ़ाने-सिखाने लग गई।

4. छात्रों की विचित्र वेशभूषा और अस्वस्था

महादेवी के कुछ जिज्ञासु शिष्य अपने कानों में बालियाँ और हाथों में कड़े धारण करते थे। जहाँ उनके कुर्ते धुले रहते थे, वहाँ अपनी ऊँची धोती से वे नगर और ग्राम का सम्मिश्रण-सा करते नज़र आते थे। कुछ छात्र अपने बड़े भाइयों के लम्बे कुरते पहने खेतों में खड़े बिजूकों-का सा आभास देते थे। कुछेक की पसलियाँ उभरी, पेट बड़े और टाँगे तिरछी और निर्बल होती थी और वे मानव की सन्तान होने का अनुमान भर कराते थे, जबकि कुछ दूसरे छात्र अपने निर्बल, रुखे और मैले मुखों से करुणा की भावना के साथ साथ अपनी चमकहीन पीली आँखों से संसार की अपने प्रति उपेक्षा का प्रमाण ही देते थे। इतना होने पर भी घीसा नामक शिष्य उन सबसे अलग था और आज भी लेखिका का अकेले ही अलग से स्मरण आया करता है।

5. लेखिका की सनक और ममता

लेखिका को वह विशेष सन्ध्या स्मरण आती है, जब उसका नाविक चिन्तित मुद्रा में लहरे देख रहा था और उसकी अपनी बूढ़ी भक्तिन उसकी पुस्तकें, कागज़ लेखनी आदि नाव पर सहेज कर धरते हुए या तो बढ़ते जाते अँधेरे पर खीझ-भरे स्वर में कुछ बुड़बुड़ा रही थी या फिर उसे सनकी स्वभाव वाला बनाने वाले विधाता पर, यह समझना उसके लिए सरल न था। भक्तिन ने उसके साथ दस लम्बे वर्ष काट दिए थे। चूँकि वह उसके स्वभावगत सनकी मन के दुष्परिणाम सहती रही है, इसलिए अपने को उसकी एक अभिभाविका मानने के कारण उसे उसके प्रति ममता ही होती है।

तभी उसने अपनी ओर एक लम्बे और साँवले मुखड़े और छोटी तथा व्यथा से भरी आँखों वाली नारी की आकृति को आते हुए देखा। वह अपने पैरों से एक दुर्बल और अधनंगे बालक को भी चिपकाए हुए थी। उसने बताया कि वह विधवा है और जब घरों में लीपने-पोतने का काम करने जाती है, तब पीछे उसका यह इकलौता पुत्र व्यर्थ ही घूमता-फिरता है। सो, यदि वह दूसरे बच्चों के साथ इसे भी बैठने किया करे, तो यह उससे कुछ ज्ञान पा सकेगा।

6. घीसा का रेखाचित्र

अगले रविवार ही लेखिका ने घीसा नामक उस बालक को कक्षा में पीछे एक ओर अकेले दुबक कर बैठे हुए देखा। उसका रंग पक्का था, किन्तु देह की गठन सुडौल थी, उसके मैले मुख पर दो पीली, परन्तु जागरूक आँखें जटिल-सी लगती थी। पतले अधरों की दृढ़ता और सिर के खड़े छोटे केशों की उग्रता उसके मुख की कोमलता से मानो विद्रोह-सा करती लगती थी।

महादेवी के ही शब्द हैं -

''उभरी हड्डियों वाली गर्दन को सँभाले हुए झुके कन्धों से, रक्तहीन मटमैली हथेलियों और टेढ़े कटे हुए नाखूनों-युक्त हाथों वाली पतली बाँहे ऐसे झूलती थीं, जैसे ड्रामा में विष्णु बनने वाले की दो नकली भुजाएँ। निरन्तर दौड़ते रहने के कारण उस लचीले शरीर में दुबले पैर ही विशेष पुट जान पड़ते थे। बस ऐसा ही था वह, न नाम में कवित्व की गुजाइंश न शरीर में।'' (पृष्ठ 64)

उसकी घड़ी-सी निरन्तर खुली आँखें जिज्ञासा से भर कर मानो लेखिका-गुरु को ताकती हुई उसकी सारी विद्या-बुद्धि ही सोख लेना चाहती थी।

7. घीसा का नामकरण

घीसा कोरी जाति का बालक था। अपनी माँ, नानी या बुआ आदि द्वारा घीसा से सदैव दूर ही रहने की चेतावनी पाने के कारण लड़के प्रायः उससे दूर और खिंचे-खिंचे से ही रहा करते थे। घीसा का पिता तो उसके जन्म से पहले ही परलोक चला गया था। घर में किसी भी संरक्षक के शेष न रहने के कारण उसकी माँ उसे सदैव बन्दरिया के बच्चे-सा चिपकाए घूमती थी। जब वह मज़दूरी का काम करते हुए व्यस्त हो जाती, तब वह बालक पेट के बल घसीटते रहने के कारण 'घीसा' नाम के सर्वथा योग्य हो गया।

8. बूढ़े बढ़ई पिता और युवती माँ का स्वाभिमान

धिसा का पिता कोरी नामक नीची जाति का होने पर भी स्वाभिमानी या और एक भला पुरुष बनना चाहता था। डलिया बुनने का पुराना काम छोड़कर वह बढ़ईगीरी करने लगा और एक दिन अन्य गाँव की एक युवती को बहु-रूप में लाकर उसने अपनी जाति की सुन्दरी बालाओं को निराशा में डुबा दिया था। गाँव भर के चौखट किवाड़ बनाकर और ठाकुरों के घरों में कलई आदि कर करके जब वह ठाठ-बाठ से रहने लगा, तब भगवान् ने उसे अपने पास बुलवा लिया। उसके मरने के बाद यद्यपि गाँव के अनेक विधुर और कँवारे कोरियों ने उसकी विधवा माँ से विवाह करके उसे सधवा बनाना चाहा, किन्तु उसने न केवल उनका प्रस्ताव अस्वीकृत किया, अपितु यह टका-सा जवाबह भी दिया - ''हम सिंध के मेहरारु होइके का सियारन के जाब''

अर्थात् 'हम सिंह की पत्नी होकर भला अब गीदड़ों के पास क्यों जाएँगे। फिर उसने जब एक बड़े घर की विधवा का स्वागत करना आरम्भ कर दिया, तब सारा समाज क्षुब्ध होकर ही रह गया। घीसा अपने पिता के मरने के बाद छह महीने बीतने पर जन्मा था, परन्तु गाँव वालों ने वह कालावधि किसी रबड़-सी खींचकर एक वर्ष तक बढ़ा दी थी।

9. घीसा की शिक्षा-सम्बन्धी एकाग्रचितता और प्रवीणता

सब बच्चों में घीसा न केवल अपना पाठ सबसे पहले समझता था, अपितु वह पाठ-व्यवहार के समय पूरी तरह स्मरण भी रखता था। उसकी पुस्तक में कभी एक भी धब्बा न लगा होता और वह अपनी

स्लेट को सदैव चमकती ही रखता और लघुतम उत्तरदायित्व का वहन भी अत्यन्त गंभीरता से करने में सबसे अधिक चतुर सिद्ध हुआ करता। लेखिका ने कई बार उसे अपने लिए उसकी माँ से माँगना भी चाहा, परन्तु वह तो अपनी उपेक्षिता, किन्तु मानिनी विधवा माँ का एकमात्र सहारा था। जिसकी गुरु-भक्ति इतनी एकनिष्ठ और गहरी थी, ठीक वैसी ही उसकी मातृभक्ति होनी भी स्वभाविक थी। सो, घीसा का पालन-पोषण उन्हीं कठोर परिस्थितियों में जैसे-तैसे होता रहा। आखिर क्रूर नियति ने उसे वहाँ अपने मनोविनोद के लिए जो रखा हुआ था।

10. घीसा की धार्मिक आस्था और कर्त्तव्यपरायणता

प्रत्येक शनिवार को घीसा पीपल वृक्ष की छाया को अपने निर्बल हाथों से गौर और मिट्टी से पीली और चिकनी कर आता। रविवार के दिन माँ के मज़दूरी के लिए जाने के बाद मैले-फटे वस्त्र में रोटी बाँधता कुछ नमक, चबेना लेकर अपनी बगल में गुड़ की एक डली दबा लेता और पुनः पीपल की छाया पर झाड़ू फेरने के बाद गंगा किनारे बैठकर दूर तक दृष्टि फेंकता रहता। लेखिका की नीली-श्वेत नौका की झलक देखकर वह दौड़ते हुए केवल साथियों को सुनाने के लिए ही 'गुरु साहब की गुहार लगाते हुए उसी पीपल तले चला जाता। फिर नीची डाल पर धरी हुई शीतल पाटी उतार कर उसे झाड़ पोंछ कर बिछाता और काली कच्चे काँच की दवात, टूटे निब, भूर-हरे कलीम आदि को वृक्ष के कोटर से निकाल कर यथास्थान रख देता। तब वह निराला छात्र आगे बढ़कर अपनी अध्यापिका के सप्रणाम स्वागत के लिए तैयार हो जाता था।

लेखिका के अनुसार वह एक मास में केवल तीन-चार दिन ही घीसा के पास जाती थी, किन्तु उसके हृदय का उसे जैसे परिचय प्राप्त हुआ 'वह चित्र के एल्बम के समान निरन्तर नवीन-सा लगता है। (पृष्ठ 66)

11. छात्रों की घोर दरिद्रता और दैहिक निर्बलता

लेखिका को आज तक वह दिन भी स्मरण रह गया है, जब छात्रों के लिए उचित वस्त्रों की व्यवस्था किए बिना ही उसने उन्हें स्वच्छता की महता समझाते हुए थका डालने की नासमझी कर डाली थी। अगले रविवार सभी छात्र पहले की ही तरह उसके सामने उपस्थित थे। उनमें से कुछ छात्र गंगा-जल से इस प्रकार अपना मुँह धो आए थे कि मैल कई भागों में बँट गया था, कुछ दूसरे छात्र न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी' की कहावत चरितार्थ करने के लिए अपने मैले-फटे कुरते अपने घर ही में छोड़कर हड्डियों वाले पिंजर शरीरों से आ गए थे उनमें घीसा लुप्त था। पूछने पर उसके साथियों ने उसे बताया कि वह कितने दिनों से माँ को कपड़े धोने वाला साबुन लाने के लिए कहता रहा, किन्तु न तो उसकी माँ को अपनी मज़दूरी के पैसे मिले और न ही दुकानदार ने उसे अनाज के बदले साबुन दिया। चूँकि रात को ही माँ को मजदूरी मिली थी। सो, नहाकर गीले अँगोछे और अधभीगे कुरते में ही जब घीसा लेखिका के सामने किसी अपराधी-सा आ खड़ा हुआ, तब तो उसकी आँखें और देह के सभी रोम गीले होते चले गए उस समय समझ में आया कि द्रोणाचार्य ने अपने शील शिष्य से अँगूठा कैसे कटवा लिया था!'

12. बालकों की परस्पर कलह की मनोवृत्ति

लेखिका एक दिन अपने उस छात्रों के लिए पाँच-छह सेर जलेबियाँ ले आई, परन्तु प्रत्येक बालक को पाँच से अधिक न मिल सकी। कोई बालक कहता उसे तो एक जलेबी कम मिली है। दूसरा अपनी जलेबी

किसी द्वारा छीनी जाने की शिकायत करने लगा, तीसरे को अपने छोटे भाई के लिए भी चाहिए थी। इसी बीच जब घीसा अपने हिस्से की जलेबियाँ लेकर खिसक गया, तब उसके एक नटखट साथी अपने मित्र से उसके बारे में कहा-'सार एक दो पिलवा पाले है, आरु का देय बरेगा होई' -अर्थात् साला एक अदद पिल्ला पाले हुए है, उसी को देने के लिए चला गया होगा।

तभी अध्यापिका की दृष्टि से झिझक कर मौन साध कर रह गया। तभी घीसा ने आकर बताया कि दो जलेबियाँ जलखई वाले छन्ने में लपेटकर वह माँ के लिए छप्पर में अड़ा आया है, एक मातृविहीन पिल्ले को खिला आया है और दो उसने स्वयं खा ली हैं। जब लेखिका ने 'और चाहिए?' प्रश्न किया तब उसने एक जलेबी कम पड़ने वाले पिल्ले के लिए ही याचना की।

13. घीसा की रोगग्रस्तता और गुरु की सुरक्षा-चिन्ता

होली से पहले हिन्दू-मुस्लिम-वैमनस्य बढ़ रहा था। घीसा को दो सप्ताहों से ज्वर था। लेखिका एक दिन जब स्वयं उसको देखने के लिए गई, तब वह स्वयं डगमगाते पगों से उसी की ओर आ रहा था। देखकर उसका मन विकल हो उठा। चूँकि वह पन्द्रह दिनों से उठ भी न पाया था, सो उसे सन्निपात रोग का भी सन्देह हुआ। उसके सूखे तन में बिजली-सी दौड़ती लगी, आँखें पहले से अधिक तेजपूर्ण थीं और मुख हलकी आँच पर धीरे-धीरे लाल होते लौह-खण्ड सा दिख रहा था।

प्यास लगने पर उसने अँधी आजी (माँ) से पानी माँगना ठीक न समझा। मुल्लू के कक्का ने लौट कर अँधी माँ को सूचना दी कि नगर में तो दंगा-फसाद हो रहा है। तभी अपनी 'गुरु साहब' (महादेवी) का स्मरण करते ही बूढ़ी माँ को बताए बिना वह दीवार, पेड़ आदि का सहारा लेते हुए बाहर की ओर भागा और लेखिका के चरण पकड़ कर उसे वहीं रहने और नगर की ओर न जाने देने की बात करने लगा। उस समय घीसा की दृढ़ता और हठवादिता में उसकी स्वभावगत विनम्रता और आज्ञाकारिता न जाने कहाँ लुप्त हो गई थी।

14. घीसा की सहपाठियों से सहानुभूति और मातृवत्सलता

तभी महादेवी ने घीसा को बताया कि उसके साथ रेल में बैठकर कुछ ऐसे छात्र भी आए हुए है, जो अपनी-अपनी माँ के पास वर्ष में केवल एक ही बार पहुँच पाते हैं। यदि वह न लौटी, तो वे सब अकेले घबरा जाएँगे। यह सुनते ही घीसा का सारा हठ और विरोध यों बह गया जैसे पहले था ही नहीं। तब घीसा ने उसे यह तर्क भी दिया कि जो छात्र अपनी माँ के पास नहीं जा सकते, उनके पास उसे स्वयं जाना चाहिए। घीसा इस नेक काम के लिए उसे कभी वहाँ अपने पास नहीं रोकेगा क्योंकि रोकने से स्वयं भगवान् उससे रुष्ट हो जाएँगें।

15. गुरु को तरबूज की दक्षिणा

आखिर अपने छात्रों को छोड़ कर जाने वाला दिन भी आ पहुँचा। महादेवी का मन तब अत्यन्त अस्थिर हो उठा। कुछ छात्र उदास थे तो दूसरे खेलने-कूदने के लिए छुट्टियाँ का ध्यान करके प्रसन्नचित्त थे कुछ यह जानना चाहते थे कि छुट्टियों के दिन चूने की टिपकियाँ रख कर गिने जायें, या कोयले की लकीरें खींच कर।' (पृष्ठ 70)

जब लेखिका वहाँ से चली, तब उसका मन भारी हो रहा था और आँखों में कुहासा-सा छाने लगा था। उन दिनों डाक्टरों को उसके पेट में कोई फोड़ा होने की आशंका थी और वे ऑपरेशन करने की संभावना भी व्यक्त कर रहे थे। कभी वहाँ लौट भी पाऊँगी या नहीं, यही सोचती हुई उसकी दृष्टि कुछ

चिरपरिचित स्थलों पर जाकर अटकी रह गई।

घीसा का संवेदनशील मन जान चुका था कि आज उसे अपने 'गुरु साहब' को विदा करना था। लेखिका को अभी इस बात का अनुमान लगाना था कि वह उपेक्षित बालक घीसा अपने अन्तर्मन में उसके लिए कितनी सरल ममता और विरहजन्य कितनी व्यथा समेटे हुए था। तभी वह उसके लिए अपने हाथों में एक बड़ा-सा तरबूज लिए प्रकट हुआ। चूंकि उसक पास न कोई पैसा था, न खेत, सो पहले तो उसे उस पर चोरी करने की मिथ्या सन्देह हुआ। पूछने पर घीसा ने उसे सच्चाई बताई कि खेत के स्वामी के पुत्र ने उसे उसका कुरता लेकर बदले में वह तरबूज दिया था। एक तो कई दिनों से उसकी नज़र उसके नये कुरते पर थी, दूसरे तरबूज़ की कीमत चुकाने के लिए उसके पास पैसे न थे। गुरु साहब को उसके लिए चिन्ता नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वैसे भी गर्मी में वह कुरता नहीं पहनता और आने-जाने के लिए पुराने-कुरते से ही काम चला सकता है। फिर भोलेपन से उसने यह रहस्य भी उद्घाटित कर दिया कि तरबूज़ कहीं सफेद न हो, इसलिए उसने पहले उसे कटवा कर भी देखा था और मीठापन जाँचने के लिए अँगुलि डाल कर कुछ निकाला भी था। यदि वह नहीं लेंगी, तो वह उस रात क्या, छुट्टियों भर रोता रहेगा। यदि यह भेंट वे स्वीकार कर लेंगी, तो वह नित्यप्रति नहा-धोकर वृक्ष तले पठित पाठ दुहराया करेगा और छुट्टी बीतने पर तो अपनी तख्ती पर पूरी पुस्तक तक लिख कर दिखा देगा।

तब घीसा के सिर पर अपना हाथ धर कर लेखिका भावों की अधिकता से जड़ीभूत खड़ी रह गई। उसी के शब्द हैं - 'उस तट पर किसी गुरु को किसी शिष्य से कभी ऐसी दक्षिणा मिली होगी, ऐसा मुझे विश्वास नहीं, परन्तु उस दक्षिणा के सामने संसार में अब तक सारे आदान-प्रदान फीके जान पड़े (पृष्ठ 72)।

16. घीसा का स्वर्गवास और स्नेहिल स्मरण

इसके बाद लेखिका घीसा के सुख की विशेष व्यवस्था करके अपने घर लौट आई इसके बाद वह उसके गाँव कई महीनों तक न लौट पाई। सम्भावना के अनुसार उसे उसका कोई भी समाचार न मिलना था न ही मिला।

लेखिका के ही करुणाजनक शब्द हैं - 'जब फिर उस ओर जाने का मुझे अवकाश मिला, तब घीसा को उसके भगवान् जी ने सदा के लिए पढ़ने से अवकाश दे दिया था - आज वह कहानी दोहराने की मुझमें शक्ति नहीं है। (पृष्ठ 71)

कदाचित् भविष्य में वर्षों बाद वह घीसा के लघु किन्तु उपेक्षित जीवन के अन्त के बारे में दार्शनिक की-सी धीरता से कुछ बता सकेगी। अभी तो वह दुःख से मैले दूसरे मुखों में उसी की छाया खोजती रहे, यही कामना उसके लिए पर्याप्त जान पड़ती है।

सप्रसंग व्याख्याएँ

1. यह कथा अनेक क्षेपकोंमय विस्तार .... कोई छूत की बीमारी हो। (पृष्ठ 65)

प्रसंग - यह गद्यांश महादेवी वर्मा के संस्मरण से चुना गया है। इससे पूर्व लेखिका ने घीसा के पिता के कोरी नामक निम्न जाति के और अभिमानी, किन्तु एक सज्जन होने की बात की है। पिता ने डलिया आदि बुनने का कार्य छोड़ कर बढ़ईगीरी का धँधा अपना लिया था और एक युवती नारी से विवाह कर लिया। पिता के अकाल निधन के बाद घीसा की स्वाभिमानिनी माँ ने यह कह कर कोरी जाति के कई व्यक्तियों के प्रस्ताव ठुकरा दिए थे कि - 'हम सिंघ के मेहरारु होई के का सियारन के जाब?

अपने पिता के मरने के छह मास बाद ही घीसा का जन्म हुआ था। यह और बात है कि जनता ने अपनी अतिशयोक्ति की प्रवृति के अनुसार इन अवधि को एक वर्ष तक बढ़ा दिया था। यह व्यथा-कथा और उसकी लोगों और महादेवी पर प्रतिक्रिया की बात ही प्रस्तुत गद्य-पंक्तियों में की गई है।

व्याख्या - लेखिका का कथन है कि घीसा के जीवन की कहानी अनेक जोड़ी गई बातों के साथ उसका मन प्रभावित करके बदलने के लिए उसे सुनाई गई थी। उसका मन मुड़ा था तो था, परन्तु किसी शाश्वत नियम के अनुसार उसकी दिशा कथावाचक - अर्थात् कहानी सुनाने वालों की अपेक्षा उल्टे कहानी के नायक अर्थात् घीसा की ओर ही मुड़ गई - अर्थात् समीप आता चला गया। उसका निजी जीवन सामान्य नियमों के एक अपवाद के ही समान था, इस बात को वह बेचारा यद्यपि पूर्ण रूप से जानने में असमर्थ ही रहा था, तथापि जो अधूरा या थोड़ा बहुत वह जान पाया था, उसी के फलस्वरूप अपने को दीन-हीन मान कर वह अपने को निष्ठुर और स्वार्थी जनों से ऐसे दूर-दूर ही रखने लगा था, मानो उसे कोई संक्रामक रोग हो और जिसके छूने से किसी दूसरे व्यक्ति को हानि हो सकने की आशंका हो।

गद्य-सौन्दर्य

प्रस्तुत गद्य-पंक्तियों में दलित वर्गीय घीसा की विवशता, निश्छलता और परिहितैषिता की भावनाओं को ही वाणी प्रदान की गई है। महादेवी ने गद्य की समास-शैली में केवल नपे तुले शब्दों का प्रयोग करते हुए भोला और निरीह घीसा के प्रति अपने मन की संवेदना गहराने के स्वानुभव को व्यक्त किया है।

भाषा के धरातल पर इन संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है- कथा, अनेक, क्षेपक, विस्तार मन, नायक, अधिक, निकट, जीवन, सम्बन्धी अपवाद, कदाचित्, प्रभाव, छाया, प्रकार इत्यादि।

तद्भव शब्द विरल ही हैं यथा सब (सं. सर्व) भी (सं. अपि) पूरा (सं. पूर्ण)

'कम' फारसी विशेषण शब्द है। गद्य-भाषा में बोधगम्यता, सहजता के साथ-साथ प्रवाहमयता भी विद्यमान् है।

2. 'पर उसके वातग्रस्त होने से भी .... किसी तरह भी न जाने देगा।' (पृष्ठ 68)

प्रसंग - यह गद्यांश महादेवी वर्मा के संस्मरण घीसा से उद्धृत किया गया है, जोकि डा० सुधाजितेन्दर ने महादेवी वर्मा का गद्य साहिय में संकलित है। इससे पूर्व लेखिका ने दो सप्ताहों से घीसा के ज्वरग्रस्त होने की बात जानकर उसे देखने जाने की बात की है। उससे मिलकर उसे यह आशंका हुई कि कहीं उसे 'त्रिदोष' अर्थात् कफ, पित और वात के मिश्रित रूप वाला रोग तो ही हो चुका है। इसी रोग की पारिभाषिक संज्ञा सन्निपात है। उसकी आँखें और मुख हल्की आँच पर धीरे धीरे लाल होने वाले टुकड़े के समान नज़र आ रहे थे। उसने अपने बारे में जो बुद्धिमत्तापूर्ण विवरण था, वही प्रस्तुत पंक्तियों में हैं।

व्याख्या- घसिया ने जो बुद्धिमत्तापूर्ण आप बीती घटना लेखिका को सुनाई, वह तो सन्निपात रोग से कहीं अधिक चिन्तातुर कर देने वाली थी। ज्वर में पड़े-पड़े जब उसे प्यास लगी, तब वह नींद से जाग उठा और पानी के लिए अपनी अँधी माता को कष्ट देने की अपेक्षा मौन भाव से तृष्णा का वह कष्ट स्वयं झेलता रहा। तभी नदी की दूसरी ओर से मुल्लू के काका ने आकर उसकी अँधी माँ को नगर में साम्प्रदायिक दंगा होने की सूचना हुई ठीक उसी समय घीसा को अपनी गुरु साहब अर्थात् महादेवी की सुरक्षा की चिन्ता होने लगी। वह बूढ़ी माँ को कुछ भी बताए बिना ही दीवार, पेड़ आदि का सहारा लेता हुए उसी दिशा में दौड़ता चला आया हैं उसने अपनी 'गुरु साहब' के चरण पकड़ कर वहीं पड़े रहने और लौट कर दूसरी

ओर नगर में न जाने देने का हठ ठान लिया है।

गद्य-सौष्ठव

यहाँ निम्नजातीय घीसा की अपनी अध्यापिका महादेवी के प्रति सत्यनिष्ठा, सेवा-भावना श्रद्धा-सम्मान आदि की भावनाएँ ही सिद्ध होती है। वह जिस किसी भी प्रकार से लेखिका के प्राण संकट में पड़े होना नहीं देख सकता था। यहाँ गद्य की व्यास शैली का निदर्शन देखने को मिलता है।

भाषा में इन संस्कृत तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है - वात-ग्रस्त, अधिक, चिन्ताजनक, कष्ट, पार गुरु, ध्यान।

तद्भव शब्द ये हैं - भी (सं. अति), पानी (सं. पानीय), पास (सं. पार्श्व) तव (सं. तदा)।

'आजी' देशज शब्द-प्रयोग है, जिसका अर्थ है - माँ। 'गोड़' अज्ञात व्युत्पतिक शब्द 'घुटने' अर्थ में लोकप्रचलित रहा है।

समग्रतः यह गद्य-भाषा लेखिका के मनोभावों की सीधी-सच्ची अभिव्यक्ति में पूर्णतः सहायक कही जा सकती है।

*****

पाठ संख्या– 1.4

भक्तिन

1. परिचय :

भक्तिन का कद छोटा, शरीर दुबला, पतले होंठ छोटी–छोटी आँखें थीं। महादेवी के साथ रहने को लेकर भक्तिन कुछ इस प्रकार जवाब देती है – 'तुम पचै का का बताई–यहै पचास बरिस से संग रहित है।' इस हिसाब से महादेवी पचहत्तर की ठहरती है और वह सौ वर्ष की आयु भी पार कर जाती है, इसका भक्तिन को पता नहीं। पता हो भी, तो सम्भवतः वह महादेवी के साथ बीते हुए समय में रत्तीभर भी कम न करना चाहेगी।

2. उपनाम : लक्ष्मी :

भक्तिन का माता–पिता के द्वारा दिया गया नाम लक्ष्मी था किन्तु जब वह महादेवी वर्मा की शरण में आती है तो वह बताती है आभाव से युक्त जीवन जीते हुए इतना समृद्ध नाम रखना उसे ज़रा भी नहीं भाता। इसलिए वह नहीं चाहती थी कि कोई भी उसे लक्ष्मी नाम से जाने। यह नाम उसने सबसे छुपा के रखा था। पिता की प्यारी किन्तु विमाता की आँखों में खटकने वाली लक्ष्मी का विवाह हँडिया गाँव में मात्र पाँच वर्ष की ही थी कि विमाता ने उसका गौना भी कर दिया।

3. पिता की मृत्यु :

पिता का उस पर अगाध प्रेम होने के कारण स्वभावतः ईर्ष्यालु और सम्पत्ति की रक्षा में सतर्क विमाता ने उनके मरणान्तक रोग का समाचार तब भेजा, जब वह मृत्यु की सूचना भी बन चुका था। रोने–पीटने के अपशकुन से बचने के लिए सास ने भी उसे कुछ न बताया। बहुत दिन से नैहर नहीं गई, जो जाकर देख आवे, यही कहकर और पहना–उढ़ाकर सास ने उसे विदा कर दिया। इस अप्रत्याशित अनुग्रह ने उसे पैरों में जो पंख लगा दिये थे, वे गाँव की सीमा में पहुँचते ही झड़ गये। 'हाय लछमिन अब आई' की अस्पष्ट पुनरावृत्तियाँ और स्पष्ट सहानुभूतिपूर्ण दृष्टियाँ उसे घर तक ठेल ले गईं। पर वहाँ न पिता का चिह्न शेष था, न विमाता के व्यवहार में शिष्टाचार का लेश था। दुःख से शिथिल और अपमान से जलती हुई वह उस घर में पानी भी बिना पिये उल्टे पैरों ससुराल लौट पड़ी। सास को खरी–खोटी सुनाकर उसने विमाता पर आया हुआ क्रोध शान्त किया और पति के ऊपर गहने फेंक–फेंककर उसने पिता के चिर बिछोह की मर्मव्यथा व्यक्त की।

4. बेटियों की माँ बनना :

बेटियों की माँ बनने पर ससुराल में भक्तिन का आदर और कम हो गया। जिठानियाँ बैठकर लोक चर्चा करतीं, और उनके कलूटे लड़के धुल उड़ाते। वह मट्ठा फेरती, कूटती, पीसती, राँधती और उसकी नन्हीं लड़कियाँ गोबर उठातीं, कंडे पाथतीं। जिठानियाँ अपने भात पर सफेद राब रखकर गाढ़ा दूध डालतीं और अपने लड़कों को औटते हुए दूध पर से मलाई उतारकर खिलातीं। भक्तिन काले गुड़ की डली के साथ कठौती में मट्ठा पीती और उसकी लड़कियाँ चने–बाजरे की धुंधीं चबातीं।

5. **विभिन्न कार्यों में निपुण :**

उसकी जिठानियाँ बात–बात पर धमाधम पीटी–कूटी जाती; पर उसके पति ने उसे कभी उँगली भी नहीं छुआई। वह बड़े बाप की बात की बड़ी बात वाली बेटी को पहचानता था। इसके अतिरिक्त परिश्रमी, तेजस्विनी और पति के प्रति रोम–रोम से सच्ची पत्नी को वह चाहता भी था, क्योंकि उसके प्रेम के बल पर ही पत्नी ने अलगौझा करके सबको अँगूठा दिखा दिया। काम वही करती थी, इसलिए गाय–भैंस, खेत–खलिहान, अमराई के पेड़ आदि के सम्बन्ध में उसी का ज्ञान बहुत बढ़ा–चढ़ा था।

6. **पति की मृत्यु :**

धूम–धाम से बड़ी लड़की का विवाह करने के उपरान्त, पति ने घरौंदे से खेलती हुई दो कन्याओं और कच्ची गृहस्थी का भार उन्तीस वर्ष की पत्नी पर छोड़कर संसार से विदा ली। जब वह मरा, तब उसकी अवस्था छत्तीस वर्ष से कुछ ही अधिक रही होगी; पर पत्नी आज उसे बुढ़ऊ कहकर स्मरण करती है। भक्तिन सोचती है कि जब वह बूढ़ी हो गई, तब क्या परमात्मा के यहाँ वे भी न बुढ़ा गये होंगे, अतः उन्हें बुढ़ऊ न कहना उनका घोर अपमान है।

7. **बेटियों का विवाह :**

पति की मृत्यु के पश्चात् घर की सारी जिम्मेदारी संभालते हुए महादेवी ने छोटी लड़कियों के हाथ पीले पर उन्हें ससुराल पहुँचाया और पति के चुने हुए बड़े दामाद को घर जमाई बनाकर रखा। इस प्रकार उसके जीवन का तीसरा परिच्छेद आरम्भ हुआ। महादेवी का दुर्भाग्य भी उससे कम हठी नहीं था, इसी से किशोरी से युवती होते ही बड़ी लड़की भी विधवा हो गई।

8. **विधवा बेटी का पुनः विवाह :**

एक दिन भक्तिन की अनुपस्थिति में एक परिचित ने बेटी की कोठरी में घुसकर भीतर से द्वार बन्द कर लिया और उसके समर्थन गाँववालों को बुलाने लगे। अहीर युवती ने जब इस डकैत वर की मरम्मत कर कुण्डी खोली, तब पंच बेचारे समस्या में पड़ गये। तीतरबाज युवक कहता था, वह निमन्त्रण पाकर भीतर गया और युवती उसके मुख पर अपनी पाँचों उँगलियों के उभार में इस निमन्त्रण के अक्षर पढ़ने का अनुरोध करती थी। अन्त में दूध–का–दूध पानी–का–पानी करने के लिए पंचायत बैठी और सबने सिर हिला–हिलाकर इस समस्या का मूल कारण कलियुग को स्वीकार करते हुए दोनों का विवाह करवा दिया।

9. **आर्थिक विपत्ति :**

इतने यत्न से सँभाले हुए गाय–ढोर, खेती–बारी सब पारिवारिक द्वेष में ऐसे झुलस गये कि लगान अदा करना भी भारी हो गया, सुख से रहने की कौन कहे। अन्त में एक बार लगान न पहुँचने पर जमींदार ने भक्तिन को बुलाकर दिन भर कड़ी धूप में रखा। यह अपमान तो उसकी कर्मठता में सबसे बड़ा कलंक बन गया, अतः दूसरे ही दिन भक्तिन कमाई के विचार से शहर आ पहुँची।

10. **महादेवी के घर का काम संभालना :**

शहर आकर भक्तिन महादेवी के घर में चूल्हा चौका करने लग गई। उससे रोटियाँ अच्छी सेंकने के प्रयास में कुछ अधिक खरी हो जाती थीं। तरकारियाँ थीं, पर जब दाल बनी है तब उनका क्या काम–शाम को दाल न बनाकर तरकारी बना दी जाती थी। दूध–घी महादेवी को अच्छा नहीं लगता, नहीं तो सब ठीक हो जाता। अब न हो तो अमचूर और लाल मिर्च की चटनी पीस ली जाती। उससे भी काम न चले, तो वह गाँव से लाई हुई गठरी में से थोड़ा–सा गुड़ दे देगी। और शहर के लोग क्या कलाबत्तू खाते

हैं? फिर वह कुछ अनाड़िन या फूहड़ नहीं। उसके ससुर, पितिया ससुर, अजिया सास आदि ने उसकी पाक–कुशलता के लिए न जाने मितने मौखिक प्रमाण–पत्र दे डाले हैं।

भक्तिन के इस सारगर्भित लेक्चर का प्रभाव यह हुआ कि महादेवी, मीठे से विरक्ति के कारण बिना गुड़ के और घी से अरुचि के कारण रुखी दाल से एक मोटी रोटी खाकर बहुत ठाठ से यूनिवर्सिटी पहुँचती।

11. भक्तिन का स्वभाव :

भक्तिन का स्वभाव ही ऐसा बन चुका है कि वह दूसरों को अपने मन के अनुसार बना लेना चाहती है; पर अपने सम्बन्ध में किसी प्रकार के परिवर्तन की कल्पना तक उसके लिए सम्भव नहीं। मकई का, रात को बना दलिया, सवेरे मट्ठे से सोंधा लगता है। बाजरे के, तिल लगाकर बनाये हुए पुए गर्म कम अच्छे लगते हैं। ज्वार के भुने हुए भुट्टे के हरे दोनों की खिचड़ी स्वादिष्ट होती है इत्यादि। महादेवी रात–दिन नाराज़ होने पर भी उसने साफ धोती पहनना नहीं सीखा; महादेवी द्वारा धोकर फैलाये हुए कपड़ों को भी वह तह करने के बहाने सिलवटों से भर देती है। 'ओय' के स्थान में 'जी' कहने का शिष्टाचार भी नहीं सीख सकी।

12. अशिक्षित :

अपने विद्या के अभाव को वह महादेवी की पढ़ाई–लिखाई पर अभिमान करके भर लेती है। एक बार जब महादेवी सब काम करने वालों से अँगूठे के निशान के स्थान में हस्ताक्षर लेने का नियम बनाया तब भक्तिन बड़े कष्ट में पड़ गई, क्योंकि एक तो उससे पढ़ने की मुसीबत नहीं उठाई जा सकती थी, दूसरे सब गाड़ीवान दाइयों के साथ बैठकर पढ़ना उसकी वयोवृद्धता का अपमान था। अतः उसने कहना आरम्भ किया – 'हमार मलकिन तो रात–दिन कितबियन माँ गड़ी रहती है। अब हमहूँ पढ़ै लागब तो घर–गिरिस्ती कउन देखी सुनी।' वह अपने तर्क ही नहीं, तर्कहीनता के लिए भी प्रमाण खोज लेने में पटु है।

13. महादेवी के प्रति स्नेह भाव :

भक्तिन महादेवी के प्रति अत्यधिक स्नेह रखती थीं। उनकी किसी पुस्तक के प्रकाशित होने पर उसके मुख पर प्रसन्नता की आभा वैसे ही उद्भासित हो उठती है, जैसे स्विच दबाने से बल्ब में छिपा आलोक। वह सूने में उसे बार–बार छूकर, आँखों के निकट ले जाकर और सब और घुमा–फिराकर मानो अपनी सहायता का अंश खोजती है और उसकी दृष्टि में व्यक्त आत्मतोष कहता है कि उसे निराश नहीं होना पड़ता। किसी चित्र को पूरा करने मे व्यस्त, महादेवी जब बार–बार कहने पर भी भोजन के लिए नहीं उठती, तब वह कभी दही का शर्बत, कभी तुलसी की चाय वहीं देकर भूख का कष्ट नहीं सहने देती।

दिन भर के कार्य–भार से छुट्टी पाकर जब महादेवी कोई लेख समाप्त करने या भाव को छन्दबद्ध करने बैठती है, तब छात्रावास की रोशनी बुझ चुकती है, तब रात की निस्तब्धता में अकेली न छोड़ने के विचार से कोने में दरी के आसन पर बैठकर बिजली की चकाचौंध से आँखें मिचमिचाती हुई भक्तिन, प्रशान्त भाव से जागरण करती है। वह ऊँधती भी नहीं, क्योंकि महादेवी सिर उठाते ही उसकी धुँधली दृष्टि महादेवी की आँखों का अनुसरण करने लगती है। यदि वे सिरहाने रखे रैक की ओर देखती है, तो वह उठकर आवश्यक पुस्तक का रंग पूछती है, यदि वह कलम रख देती है, तो वह स्याही उठा लाती है और यदि वह कागज एक ओर सरका देती है, तो वह दूसरी फाइल टटोलती है।

बहुत रात गये सोने पर भी महादेवी जल्दी ही उठती है और भक्तिन को तो उनसे भी पहले जागना पड़ता है। भक्तिन को नौकर कहना उतना ही असंगत है, जितना अपने घर में बारी–बारी से आने–जाने वाले अँधेरे–उजाले और आँगन में फूलने वाले गुलाब और आम को सेवक मानना।

14. छात्रावास की लड़कियों के प्रति व्यवहार :

छात्रावास की बालिकाओं में से कोई अपनी चाय बनवाने के लिए उसके चौके के कोने में घुसी रहती है, कोई दूध औटवाने के लिए देहली पर बैठी रहती है, कोई बाहर खड़ी महादेवी के लिए बने नाश्ते को चखकर उसके स्वाद की विवेचना करती रहती है। लेखिका के बाहर निकलते ही सब चिड़ियों के समान उड़ जाती है और भीतर आते ही यथास्थान विराजमान हो जाती हैं।

साहित्यिक बन्धुओं से भी भक्तिन विशेष परिचित है; पर उनके प्रति भक्तिन के सम्मान की मात्रा, लेखिका के प्रति उनके सम्मान की मात्रा पर निर्भर है और सद्भाव उनके प्रति लेखिका के सद्भाव से निश्चित होता है। इस सम्बन्ध में भक्तिन की सहज बुद्धि विस्मित कर देने वाली है।

वह किसी को आकार–प्रकार और वेश–भूषा से स्मरण करती है और किसी को नाम के अपभ्रंश द्वारा। कवि और कविता के सम्बन्ध में उसका ज्ञान बढ़ा है; पर आदर–भाव नहीं।

15. कारागार से भय–

आज़ादी के लिए चल रहे संघर्ष दौरान होने वाली : कारागार से वैसे ही डरती है, जैसे यमलोक से। ऊँची दीवार देखते ही, वह आँख मूँदकर बेहोश हो जाना चाहती है। उसकी यह कमजोरी इतनी प्रसिद्धि पा चुकी है कि लोग लेखिका के जाने की सम्भावना बता–बता कर उसे चिढ़ाते रहते हैं। वह चुपचाप लेखिका से पूछने लगती है कि वह अपनी कै धोती साबुन से साफ कर ले, जिससे लेखिका को वहाँ उसके लिए लज्जित न होना पड़े। क्या–क्या सामान बाँध ले, जिससे लेखिका को वहाँ किसी प्रकार की असुविधा न हो सके।

लेखिका सोचती है कि जब ऐसा बुलावा आ पहुँचेगा, जिसमें न धोती साफ करने का अवकाश रहेगा, न सामान बाँधने का, न भक्तिन को रुकने का अधिकार होगा, न मुझे रोकने का, जब चिर विदा के अन्तिम क्षणों में यह देहातिन वृद्धा क्या करेगी और मैं क्या करूँगी? भक्तिन की कहानी अधूरी है; पर उसे खोकर लेखिका इसे पूरी नहीं करना चाहती

सप्रसंग व्याख्या :

प्रसंग : पिता का उस पर अगाध प्रेम होने के कारण स्वभावतः ईर्ष्यालु और सम्पत्ति की रक्षा में सतर्क विमाता ने उनके मरणान्तक रोग का समाचार तब भेजा, जब वह मृत्यु की सूचना भी बन चुका था। रोने–पीटने के अपशकुन से बचने के लिए सास ने भी उसे कुछ न बताया। बहुत दिन से नैहर नहीं गई, जो जाकर देख आवे, यही कह कर और पहना–उढ़ाकर सास ने उसे विदा कर दिया। इस अप्रत्याशित अनुग्रह ने उसे पैरों में पंख लगा दिए थे, वे गाँव की सीमा मे पहुँचते ही झड़ गए।

(पृष्ठ 92 महादेवी वर्मा का गद्य साहित्य
सं0 डा0 सुधा जितेन्द्र)

सप्रसंग व्याख्या :

प्रसंग : प्रस्तुत पंक्तियाँ डॉ0 सुधा जितेन्द्र द्वारा संपादित पुस्तक 'महादेवी वर्मा का गद्य साहित्य' में संकलित महादेवी वर्मा द्वारा रचित संस्करण 'भक्तिन' में से ली गई हैं। इन पंक्तियों में लेखिका बताती है कि भक्तिन का पिता उससे बहुत लाड–प्यार करता था इसी बात से ईर्ष्या करके भक्तिन की सौतेली माँ ने ससुराल गई भक्तिन को उसके पिता की मृत्यु का समाचार बहुत दिन बाद भेजा। ससुराल में भी अपने

पिता की मृत्यु का समाचार उसे नहीं मिला। सास ने भी उसे कुछ न बताया कि कहीं भक्तिन घर में रोना धोना करके घर में अपशकुन न कर दे। उससे पिता की मृत्यु को छुपाया गया। उसकी सास ने उससे कहा कि कई दिन हो गए हैं उसे अपने मायके गए हुए तो अब कुछ दिनों के लिए वह अपने मायके क्यों नहीं हो आती। यह कहकर उसकी सास ने उसे सजाधजा कर उसके मायके भेज दिया मायके जाने के चाव से जैसे भक्तिन के पैरों में पंख लगा दिए हों, जो गाँव पहुँचते ही झड़ गए। गाँव पहुँचने पर ही वह अपनी पिता की मृत्यु की असलियत से परिचित हो पाई थी।

चीनी फेरीवाला

1. सभी चीनी फेरी के विषय में लेखिका के विचार :

सभी चीनी फेरी वालों को लेकर लेखिका की सोच है कि मुझे चीनियों में पहचान कर स्मरण रखने योग्य विभिन्नता कम मिलती है। कुछ समतल मुख एक ही साँचे में ढले–से जान पड़ते हैं और उनकी एकरसता दूर करने वाली, वस्त्र पर पड़ी हुई सिकुडन जैसी नाक की गठन में भी विशेष अन्तर नहीं दिखाई देता। कुछ तिरछी, अधखुली और विरल भूरी बरुनियों वाली आँखों की तरल रेखाकृति देखकर भ्रान्ति होती है कि वे सब नाप के अनुसार किसी तेज धार से चीर कर बनाई गई हैं। आकार–प्रकार वेश–भूषा सब मिलकर इन दूर–देशियों को यन्त्रचालित पुतलों की भूमिका दे देते हैं; इसी से अनेक बार देखने पर भी एक फेरी वाले चीनी को दूसरे से भिन्न करके पहचानना कठिन है।

2. चीनी फेरी वाले का प्रथम आगमन :

कई वर्ष पहले की बात है लेखिका ताँगे से उतरकर भीतर आ रही थी और भूरे कपड़े गट्ठर बायें कंधे के सहारे पीठ पर लटकाये हुए और दाहिने हाथ में लोहे का गज घुमाता हुआ चीनी फेरी वाला फाटक से बाहर निकल रहा था। वह लेखिका से पूछती है – 'कुछ लोग मेम साब'– दुर्भाग्य का मारा चीनी। उसे क्या पता कि वह सम्बोधन मेरे मन में रोष की सबसे तुंग तरंग उठा देता है। मइया, माता, जीजी, दिदिया, बिटिया, आदि न जाने कितने सम्बोधनों से मेरा परिचय है, और सब मुझे प्रिय हैं; पर यह विजातीय सम्बोधन मानो सारा परिचय छीनकर मुझे गाउन में खड़ा कर देता है। इस सम्बोधन के उपरान्त लेखिका के पास से निराश होकर न लोटना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

लेखिका ने अवज्ञा से उत्तर दिया – 'मैं विदेशी–फॅरिन–नहीं खरीदती। 'हम फॉरेन हैं? हम तो चाइना से आता है' उसे उत्तर दिया।

3. चीनी फेरी वाले की वेशभूषा :

'धूल से मटमैले सफेद किरमिच के जूते में छोटे पैर छिपाये, पतलून और पैजामे का सम्मिश्रित परिणाम जैसा पैजामा और कुरते तथा कोट की एकता के आधार पर सिला कोट पहने, उघड़े हुए किनारों से पुरानेपन की घोषणा करते हुए हैट से आधा माथा ढके, दाढ़ी–मूँछ–विहीन, दुबली–नाटी जो मूर्ति खड़ी थी, वह तो शाश्वत चीनी है।'

4. फेरी वाले से समान खरीदना :

चीनी बरामदे में कपड़े का गट्ठर उतारता हुआ कहने लगा–'भोत अच्छा सिल्क लाता है सिस्तर! चाइना, सिल्क, क्रेप' बहुत कहने सुनने के उपरान्त दो मेजपोश खरीदना आवश्यक हो गया। सोचा–चलो छुट्टी हुई। इतनी कम बिक्री होने के कारण चीनी अब कभी इस ओर आने की भूल न करेगा। पर कोई पन्द्रह दिन बाद वह बरामदे में अपनी गठरी पर बैठकर गज को फर्श पर बजा–बजा कर गुनगुनाता हुआ मिला। उसके पास कुछ रूमाल थे। ऊदी रंग के डोरे से भरे हुए किनारों का हर घुमाव और कोनों में उसी रंग से बने नन्हे फूलों की प्रत्येक पंखुडी चीनी नारी की कोमल उँगलियों की कलात्मकता ही नहीं व्यक्त कर रही थी, जीवन के अभाव की करुण कहानी भी कह रही थी। 'सिस्तर का वास्ते लाता है, सिस्तर का वास्ते लाता है,' दोहराने–तिहराने लगा।

5. **फेरी वाले की निपुणता :**

फेरी वाला अपने काम में पूरी तरह निपुण था। नीली दीवार पर किस रंग के चित्र सुन्दर जान पड़ते हैं, हरे कुशन पर किस प्रकार के पक्षी अच्छे लगते हैं, सफेद पर्दे के कोनों में किस बनावट के फूल–पत्ते खिलेंगे आदि के विषय में चीनी उतनी ही जानकारी रखता था, जितनी किसी अच्छे कलाकार में मिलेगी। रंग से उसका अति परिचय यह विश्वास उत्पन्न कर देता था कि वह आँखों पर पट्टी बाँध देने पर भी स्पर्श से रंग पहचान लेगा।

6. **माता–पिता की मृत्यु का आघात :**

जब उसके माता–पिता ने मांडले आकर चाय की छोटी दुकान खोली, तब उसका जन्म नहीं हुआ था। उसे जन्म देकर और सात वर्ष की बहिन के संरक्षण में छोड़कर जो परलोक सिधारी, उस अनदेखी माँ के प्रति चीनी की श्रद्धा अटूट थी। सम्भवतः माँ ही ऐसा प्राणी है, जिसे कभी न देख पाने पर भी मनुष्य ऐसे स्मरण करता है, जैसे उसका सम्बन्ध में कुछ जानना बाकी नहीं। यह स्वाभाविक भी है। पिता ने जब दूसरी बर्मी चीनी स्त्री को गृहिणी–पद पर अभिषिक्त किया, तब उन मातृहीनों की यातना की कठोर कहानी आरम्भ हुई। दुर्भाग्य इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हो सका, क्योंकि उसके पाँचवें वर्ष में पैर रखते–न–रखते एक दुर्घटना में पिता ने भी प्राण खो दिए।

7. **विमाता के अत्याचार :**

अन्य अबोध बालकों के समान उसने सहज ही अपनी परिस्थितियों से समझौता कर लिया; पर बहिन और विमाता में किसी प्रस्ताव को लेकर जो वैमनस्य बढ़ रहा था, वह इस समझौते को उत्तरोत्तर विषाक्त बनाने लगा। अनेक बार उसने ठिठुरती हुई बहिन की कम्पित उँगलियों में अपना हाथ रख, उसके मलिन वस्त्रों में अपना आँसुओं से धुला मुख छिपा और उसकी छोटी–सी गोद में सिमट कर भूख भुलाई थी। कितनी ही बार सवेरे, आँख मूँदकर बन्द द्वार के बाहर दीवार से टिकी हुई बहिन की ओर से गीले बालों में, अपनी ठिठुरी हुई उँगलियों को गर्म करने का व्यर्थ प्रयास करते हुए उसने पिता के पास जाने का रास्ता पूछा था। कई बार पड़ोसियों के यहाँ रकाबियाँ धोकर और काम के बदले भात माँगकर बहिन ने भाई को खिलाया था। रात के अन्धकार में विमाता ने बहन को सजाधजा कर न जाने किस मार्ग की ओर धकेला कि वह दोबारा सिर न उठा पाई। यह तो विमाता का प्रत्येक दिन का ही कार्य हो गया।

8. **पिता को न भूला पाना :**

बालक अपनी विमाता के बढ़ते दुखों के कारण पिता को अत्यधिक याद करता था। उसे लगता था कि यदि पिता का पता मिल जाता, तो सब ठीक हो जाता। उसके स्मृति–पट पर माँ की कोई रेखा नहीं; परन्तु पिता का जो अस्पष्ट चित्र अंकित था, उससे उनके स्नेहशील होने में सन्देह नहीं रह जाता। प्रतिदिन निश्चत करता था कि दुकान में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति से पूछेगा और एक दिन चुपचाप उनके पास पहुँचकर और उसी तरह चुपचाप उन्हें घर लाकर खड़ा कर देगा–तब यह विमाता कितनी डर जायेगी और बहिन कितनी प्रसन्न होगी। वह हकला–हकलाकर पिता का पता पूछने लगा। कुछ ने उसे आश्चर्य से देखा, कुछ मुस्करा दिये, पर दो एक ने दुकानदार से कुछ ऐसी बात कही, जिससे वह बालक को हाथ पकड़कर बाहर ही नहीं छोड़ आया, इस भूल की पुनरावृत्ति होने पर विमाता से दण्ड दिलाने की धमकी भी दे गया। इस प्रकार उनकी खोज का अन्त हुआ।

9. **बहन का लापता होना :**

बहिन का सन्ध्या होते ही कायापलट, फिर उसका आधी रात बीत जाने पर भारी पैरों से लौटना, विशाल शरीरवाली विमाता की जंगली बिल्ली की तरह हल्के पैरों से बिछौने से उछलकर उतर आना, बहिन के शिथिल हाथों से बटुए का छिन जाना और उसका भाई के मस्तक पर मुख रखकर स्तब्ध भाव से पड़ रहना आदि क्रम ज्यों–के–त्यों चलते रहे। पर एक बहिन लौटी ही नहीं। सबेरे विमाता को कुछ चिन्तित

भाव से खोजते देख बालक सहसा किसी अज्ञात भय से सिहर उठा। बहिन–उसकी एकमात्र आधार बहिन। पिता का पता न पा सका और अब बहिन भी खो गई।

10. अंधकारमय जीवन :

बहिन को खोजने के लिए वह गली–गली में मारा–मारा फिरने लगा। कभी किसी से टकराकर गिरते–गिरते बचता, कभी किसी से गाली खाता, कभी कोई दया से प्रश्न कर बैठता–क्या इतना जरा–सा लड़का भी पागल हो गया है। इसी प्रकार भटकता हुआ वह गिरहकटों के गिरोह के हाथ लगा और तब उसकी दूसरी शिक्षा आरम्भ हुई। जैसे लोग कुत्ते को दो पैरों से बैठना, गर्दन ऊँची कर खड़ा होना, मुँह पर पंजे रखकर सलाम करना आदि करतब सिखाते हैं, उसी प्रकार से सब उसे तम्बाकू के धुएँ और दुर्गन्धित साँस से भरे और फटे चिथड़े, टूटे बरतन और मैले शरीरों से बसे हुए कमरे में बन्दकर कुछ विशेष संकेतों और हँसने–रोने के अभिनय में पारंगत बनाने लगे।

कुत्ते के पिल्ले के समान ही वह घुटनों के बल खड़ा रहता और हँसने–रोने की विविध मुद्राओं का अभ्यास करता। हँसी का स्त्रोत इस प्रकार सूख चुका था कि अभिनय में भी वह बार–बार भूल करता और मार खाता। सबके खाने के पात्र में बचा खुचा एक तामचीनी के टेढ़े–मेढ़े बरतन में सिगार से जगह–जगह जले हुए कागज से ढककर रख दिया जाता था जिसे वह हरी आँखों वाली काली बिल्ली के साथ मिलकर खाता था।

11. जीवन में बदलाव :

उसके इस अंधकारमय जीवन में तब बदलाव आया जब उसकी भेंट पिता के परिचित एक चीनी व्यापारी से हुई। संयोग ने उसके जीवन की दिशा को इस प्रकार बदल दिया कि वह कपड़े की दुकान पर व्यापारी की विद्या सीखने लगा। प्रशंसा के पुल बाँधते–बाँधते वर्षों पुराना कपड़ा सबसे पहले उठा लाना, गज से इस तरह नापना कि जौ बराबर भी आगे न बढ़े चाहे अंगुल भर पीछे रह जाये, रुपये से लेकर पाई तक को खूब देख–भालकर लेना और लौटाते समय पुराने खोटे पैसे विशेष रूप से खनका–खनकाकर दे डालना आदि का ज्ञान कम रहस्यमय नहीं था।

12. चीनी का भारत आगमन :

मालिक के काम से चीनी रंगून आया, फिर दो वर्ष कलकत्ते में रहा और तब अन्य साथियों के साथ उसे इस ओर आने का आदेश मिला। यहाँ शहर में एक चीनी जूते वाले के घर ठहरा है और सबेरे आठ से बारह और दो से छः बजे तक फेरी लगाकर कपड़े बेचता रहता है। चीनी की दो इच्छाएँ हैं, ईमानदार बनने की और बहिन को ढूँढ लेने की–जिनमें से एक की पूर्ति तो स्वयं उसी के हाथ में है और दूसरी के लिए वह प्रतिदिन भगवान बुद्ध से प्रार्थना करता है।

13. चीन से बुलावा आना :

एक दिन पता चला – बुलावा आया है, वह लड़ने के लिए चाइना जाएगा। इतनी जल्दी कपड़े कहाँ बेचे और न बेचने पर मालिक को हानि पहुँचाकर बेईमान कैसे बने! यदि मैं उसे आवश्यक रुपया देकर सब कपड़े ले लूँ, तो वह मालिक का हिसाब चुकता कर तुरन्त देश की ओर चल दे। चीनी के अपने देश जाने में सहायता करने हेतु लेखिका ने दूसरों से उधार लेकर चीनी के जाने का प्रबन्ध किया। उन्हें अन्तिम अभिवादन कर ज बवह चंचल पैरों से जाने लगा, तब मैंने पुकारकर कहा – 'यह गज तो लेते जाओ' – चीनी सहज स्मित के साथ धूमकर 'सिस्तर का वास्ते' ही कह सका। शेष शब्द उसके हकलाने में खो गये।

आज कई वर्ष बीत चुके हैं – चीनी को फिर देखने की सम्भावना नहीं, उसकी बहिन से लेखिका का कोई परिचय नहीं, पर न जाने क्यों वे दोनों भाई–बहिन लेखिका की स्मृति पट से हटते ही नहीं।

सप्रसंग व्याख्या :

इसी प्रकार भटकता हुआ वह गिरहकटों के गिरोह के हाथ लगा और तब उसकी दूसरी शिक्षा आरंभ हुई। जैसे लोग कुत्ते को दो पैरों से बैठना, गर्दन ऊँची कर खड़ा होना, मुँह पर पंजे रखकर सलाम करना आदि करतब सिखाते हैं, उसी प्रकार से सब उसे तम्बाकू के धुएँ और दुर्गन्धित साँस से भरे और फटे चिथड़े, टूटे बरतन और मैले शरीरों से बसे हुए कमरे में बन्द कर कुछ विशेष संकेतों और हंसने–रोने के अभिनय में पारंगत बनाने लगे। **(पृष्ठ 108)**

सप्रसंग व्याख्या :

प्रस्तुत पंक्तियाँ डॉ0 सुधा जितेन्द्र द्वारा संपादित पुस्तक 'महादेवी वर्मा का गद्य–साहित्य' के अन्तर्गत महादेवी वर्मा द्वारा रचित संस्मरण 'चीनी फेरी वाला' से उद्धृत हैं। इन पंक्तियों में लेखिका चीनी फेरी वाला के बचपन के विषय में बताती है कि किस प्रकार विमाता के दुखों सं तंग आकर और अपनी बड़ी बहन को ढूंढने की खातिर चीनी फेरी वाला अपने घर से भाग जाता है। घर से भागा हुआ वह बच्चा एक ऐसे गिरोह के हाथ लग जाता है जो लोगों की जेबें काटते, लूटते थे। तब इन जेबकतरों ने उसे अपने गिरोह में शामिल करने के लिए उसकी शिक्षा प्रारम्भ कर दी। जैसे लोग कुत्तों को प्रशिक्षित करते हैं कि कैसे दो पैरों पर बैठना है, गर्दन ऊँची करके खड़े होना है, मुँह पर पंजे रखकर सलाम करना है वैसे ही कुछ इस बच्चे के साथ भी व्यवहार होता था। एक अत्यन्त गंदे–बदबूदार कमरे में कैद करके उसके मुँह पर तम्बाकू का गंदा धुँआ छोड़ा जाता। उसे गंदे से टूटे हुए बरतन में बचा–खुचा जूठा खाना दिया जाता। अन्य कई तरीकों से उसे झूठ में हंसने और रोने के कई ढंग सिखाए जाते कि किस प्रकार इन सब का प्रयोग करते हुए वह लोगों की जेबें काट सकता है।

5. सुभद्रा

1. सुभद्रा महादेवी की प्रथम भेंटः

एक सातवीं कक्षा की विद्यार्थिनी, एक पाँचवीं कक्षा की विद्यार्थिनी से प्रश्न करती है, 'क्या तुम कविता लिखती हो?' दूसरी ने सिर हिला कर ऐसी अस्वीकृति दी जिसमें हाँ और नहीं तरल हो कर एक हो गये थे। 'तुम्हारी कलास की लड़कियाँ तो कहती हैं कि तुम गणित की कापी तक में कविता लिखती हो। दिखाओ अपनी कापी।' गणित की कापी को छिपाना सम्भव नहीं था, अतः उसके साथ अंकों के बीच में अनधिकार सिकुड़ कर बैठी हुई तुकबन्दियाँ अनायास पकड़ में आ गईं।

उस युग में कविता–रचना अपराधों की सूची में थी। ऐसी स्थिति में गणित जैसे गम्भीर महत्वपूर्ण विषय के लिए निश्चित पृष्ठों पर तुक जोड़ना अक्षम्य अपराध था। सुभद्रा ने कहा अच्छा तो लिखती हो। महादेवी ने कहा 'तुमने सबसे क्यों बताया'? सुभद्रा ने कहा 'हमें भी तो यह सहना पड़ता है। अच्छा हुआ अब दो साथी हो गए।' सुभद्रा ने कह उसे दृष्टि से अधिक हृदय ग्रहण करता था।

2. सुभद्रा का रेखाचित्र :

मझोले कद, कुछ गोल मुख, चौड़ा माथा, सरल भुकृटियाँ, बड़ी ओर भावस्नात आँखें, छोटी सुडौल नासिका, हँसी को जमा कर गढ़े हुए से ओंठ और दृढ़ता सूचक ठुड्ढी सब कुछ मिला कर एक अत्यन्त निरछल, कोमल, उदार व्यक्तित्व वाली भारतीय नारी। 'मैंने हँसना सीखा है मैं नहीं जानती रोना' कहने वालों की हँसी निश्चय ही असाधारण थी। माता की गोद में दूध पीता बालक जब अचानक हँस पड़ता है, तब उसकी दूध से धुली हँसी में जैसी निश्चिन्त तृप्ति और सरल विश्वास रहता है, बहुत कुछ वैसा ही भाव सुभद्रा जी की हँसी में मिलता था।

3. सुभद्रा की आप बीती :

सुभद्रा अपने बचपन की एक घटना सुनाती थी। कृष्णा और गोपियों की कथा सुनकर एक दिन बालिका सुभद्रा ने निश्चय किया कि वह गोपी बन कर ग्वालों के साथ कृष्ण को ढूँढने जाएगी।

दूसरे दिन वे लकुटी लेकर गायों और ग्वालों के झुंड के साथ कीकर और बबूल से भरे जंगल में पहुँच गई। गोधूली बेला में चरवाहे और गायें तो घर की ओर लौट गए, पर गोपी बनने की साधवाली बालिका कृष्ण को खोजती ही रह गई। उसके पैरों में काँटें चुभ गए, कँटीली झाड़ियों में कपड़े उलझ कर फट गए, प्यास से कंठ सूख गया और पसीने पर धूल की पर्त जम गई, पर वह धुनवाली बालिका लौटने को प्रस्तुत नहीं हुई। रात होते देख घरवालों ने उन्हें खोजना आरम्भ किया और ग्वालों से पूछते–पूछते अँधेरे करील–वन में उन्हें पाया।

4. **वैवाहिक जीवन :**

क्रास्थवेट गर्ल्स कालेज में जब वे आठवीं कक्षा की विद्यार्थिनी थीं, तभी उनका विवाह हुआ। स्वतन्त्रता के युद्ध के लिए सन्नद्ध सेनानी पति को वे विवाह से पहले देख भी चुकी थीं और उनके विचारों से भी परिचित थीं। उनसे यह छिपा नहीं था कि नव–वधु के रूप में उनका जो प्राप्य है उसे देने का न पति को अवकाश है न लेने का उन्हें। उसकी गृहस्थी भी कारागार में ही बसाई जा सकती थी। जेल जाते समय उन्हें इतनी अधिक फूल–मालायें मिल जाती थीं कि वे उन्हीं का तकिया बना लेती थीं और लेटकर पुष्पशैय्या के सुख का अनुभव करती थीं।

घर और कारागार के बीच में जीवन का जो क्रम विवाह के साथ आरम्भ हुआ था व अन्त तक चलता ही रहा। छोटे बच्चों को जेल के भीतर और बड़ों को बाहर रखकर वे अपने मन को कैसे संयत रख पाती थीं यह सोचकर विस्मय होता है। कारागार में जो सम्पन्न परिवारों की सत्याग्रही मातायें थीं, उनके बच्चों के लिए बाहर से न जाने कितना मेवा–मिष्ठान्न आता रहता था। एक बार जब भूख से रोती बालिका को बहलाने के लिए कुछ नहीं मिल सका तब उन्होंने अरहर दलनेवाली बालिका को खिलाया। घर आने पर भी उनकी दशा द्रोणाचार्य जैसी हो जाती थी, जिन्हें दूध के लिए मचलते हुए बालक अश्वत्थामा को चावल के घोल से सफेद पानी दे कर बहलाना पड़ा था। पर इन परीक्षाओं से उनका मन न कभी हारा न उसने परिस्थितियों को अनुकूल बनाने के लिए कोई समझौता स्वीकार किया।

5. **घरेलू कार्यों में निपुण :**

घर से बाहर बैठ कर वे कोमल और ओज भरे छन्द लिखने वाले हाथों से गोबर के कडे पाथती थीं। घर के भीतर तन्मयता के आँगन लीपती थीं, बर्तन माँजती थीं। उस छोटे से अधबने घर की छोटी–सी सीमा में उन्होंने क्या नहीं संगृहीत किया। छोटे–बड़े पेड़, रंग–बिरंगे फूलों के पौधों की क्यारियाँ, ऋतु के अनुसार तरकारियाँ, गाय बच्छे आदि। सब की देखभाल बड़े चाव से करती थी।

6. **लेखन कार्य :**

अपनी रचनाओं में उन्होंने जीवन और समाज की अनेक समस्याओं पर विचार किया और कभी अपने निष्कर्ष के साथ और कभी दूसरों के निष्कर्ष के लिए उन्हें बड़े चमत्कारिक ढंग से उपस्थित किया।

जब स्त्री का व्यक्तित्व उसके पति से स्वतन्त्र नहीं माना जाता था तब वे कहती है, 'मनुष्य की आत्मा स्वतन्त्र है। फिर चाहे वह स्त्री–शरीर के अन्दर निवास करती हो चाहे पुरुष–शरीर के अन्दर। इसी से पुरुष और स्त्री का अपना–अपना व्यक्तित्व अलग रहता है।' जब समाज और परिवार की सत्ता के विरूद्ध कुछ कहना अधर्म माना जाता था तब वे कहती हैं, 'समाज और परिवार व्यक्ति को बन्धन में बाँधकर रखते हैं। ये बन्धन देशकालानुसार बदलते रहते हैं और उन्हें बदलते रहना चाहिये वरना वे व्यक्तित्व के विकास में सहायता करने के बदले बाधा पहुँचाने लगते हैं। परम्परा का पालन ही जब स्त्री का परम कर्तव्य समझा जाता था तब वे उसे तोड़ने की भूमिका बाँधती है। अनेक समस्याओं की ओर उनकी दृष्टि इतनी पैनी है कि सहज भाव से कही सरल कहानी का अन्त भी हमें झकझोर डालता है।

7. **वात्सल्य भाव :**

उस समय बच्चों के लालन–पालन में मनोविज्ञान को इतना महत्वपूर्ण स्थान नहीं मिला था और प्रायः सभी माता–पिता बच्चों को शिष्टता सिखाने में स्वयं अशिष्टता की सीमा तक पहुँच जाते थे। सुभद्रा

जी का कवि–हृदय यह विधान कैसे स्वीकार कर सकता था। अतः उनके बच्चों को विकास का जो मुक्त वातावरण मिला उसे देख कर सब समझदार निराशा से सिर हिलाने लगे। पर जिस प्रकार यह सत्य है कि सुभद्रा जी ने अपने किसी बच्चे को उसकी इच्छा के विरूद्ध कुछ करने के लिए बाध्य नहीं किया, उसी प्रकार यह भी सत्य है कि किसी बच्चे ने ऐसा कोई कार्य नहीं किया जिससे उसकी महीयसी माँ को किंचित् भी क्षुब्ध होने का कारण मिला हो। अपनी सन्तान के भविष्य को सुखमय बनाने के लिए उनके निकट कोई भी त्याग अकरणीय नहीं रहा। पुत्री के विवाह के विषय में तो उन्हें अपने परिवार से भी संघर्ष करना पड़ा।

8. सुभद्रा महादेवी का सम्बन्ध :

सातवीं और पाँचवीं कक्षा की विद्यार्थिनियों के सख्य को सुभद्रा जी के सरल स्नेह से ऐसी अमिट लक्ष्मण–रेखा से घेर कर सुरक्षित रखा कि समय उस पर कोई रेखा नहीं खींच सका। सुभद्रा के महादेवी के घर आने पर भक्तिन तक उन पर रौब जमाने लगती थी। महादेवी जी बँगले में आकर देखती कि सुभद्रा जी रसोई घर में या बरामदे में भानमती का पिटारा खोले बैठी है और उसमें से अद्‌भुत वस्तुएँ निकल रही हैं। छोटी–छोटी पत्थर या शीशे की प्यालियाँ, मिर्च का अचार, बासी पूरी, पेड़े, रंगीन चकला–बेलन, चुटीली, नीली–सुनहली चूड़ियाँ आदि। जब वे किसी कवि–सम्मेलन में आते–जाते प्रयाग उतर नहीं पाती थी और मुझे स्टेशन जाकर ही उनसे मिलना पड़ता था। अपने थैले से दो चमकीली चूड़ियाँ निकाल कर हँसती हुई पूछतीं, 'पसन्द हैं? मैंने दो तुम्हारे लिए, दो अपने लिए खरीदी थीं। तुम पहनने में तोड़ डालोगी। लाओ अपना हाथ, मैं पहना देती हूँ।' पहन लेने पर वे बच्चों के समान प्रसन्न हो उठतीं।

9. कवि सम्मेलनों में भाग लेना :

अनेक कवि–सम्मेलनों में उन्होंने साथ भाग लिया था, पर जिस दिन महादेवी अपने न जाने का निश्चय और उसका औचित्य उन्हें बता दिया उस दिन से अन्त तक कभी उन्होंने महादेवी के निश्चय के विरुद्ध कोई आग्रह नहीं किया। आर्थिक स्थितियाँ उन्हें ऐसे निमंत्रण स्वीकार करने के लिए विवश कर देती थीं, परन्तु मेरा प्रश्न उठते ही वे कह देती थीं, 'मैं तो विवशता से जाती हूँ, पर महादेवी नहीं जायगी, नहीं जायगी।'

साहित्य–जगत में आज जिस सीमा तक व्यक्तिगत स्पर्द्धा ईर्ष्या–द्वेष है, उस सीमा तक तब नहीं था, यह सत्य है। अपने को बड़ा बनाने के लिए दूसरों को छोटा प्रमाणित करने की दुर्बलता उनमें असम्भव थी।

10. सुभद्रा की अंतिम इच्छा :

एक बार बात करते–करते मृत्यु की चर्चा चल पड़ी थी। महादेवी ने कहा 'मुझे तो उस लहर की–सी मृत्यु चाहिए जो तट पर दूरतक आकर चुपचाप समुद्र में लौट कर समुद्र बन जाती है।' सुभद्रा बोलों, 'मेरे मन में तो मरने के बाद भी धरती छोड़ने की कल्पना नहीं है। मैं चाहती हूं, मेरी एक समाधि हो, जिसके चारों ओर नित्य मेला लगता रहे, बच्चे खेलते रहें स्त्रियां गाती रहे और कोलाहल होता रहे। इतने वर्षों की इस मित्रता को महादेवी ने अपने हृदय में संजोकर एक संस्मरण का रूप प्रदान किया।

सप्रसंग व्याख्या :

घर और कारागार के बीच में जीवन का जो क्रम विवाह के साथ आरम्भ हुआ था वह अन्त तक चलता ही रहा। छोटे बच्चों को जेल के भीतर और बड़ों को बाहर रखकर वे अपने मन को कैसे संयत रख पाती थीं यह सोचकर विस्मय होता है। कारागार में जो सम्पन्न परिवारों की सत्याग्रही माताये थीं, उनके बच्चों के लिए बाहर से न जाने कितना मेवा–मिष्ठान आता रहता था।

सप्रसंग व्याख्या :

प्रस्तुत गद्यांश डॉ. सुधा जितेन्द्र द्वारा संपादित पुस्तक 'महादेवी वर्मा का गद्य–साहित्य' में से अवतरित किया गया है। महादेवी वर्मा और सुभद्रा कुमारी चौहान में बालपन से ही मित्रता थी, जो मृत्यु

तक साथ चली। भारत की आजादी के संघर्ष के दौरान सुभद्रा जी ने बहुत बलिदान दिए। वे भी कई बार जेल में रहीं उनके पति को भी अकसर जेल में रहना पड़ता था। सुभद्रा जी का जेल से सम्बद्ध तो तुरंत उनके विवाह के साथ ही हो गया था। पति जो पहले ही स्वतन्त्रता सेनानी थे वे स्वयं भी बढचढ कर इस आन्दोलन में भाग लेने लगी थी। जिसके कारण उनको भी जेल में जाना पड़ता था। महादेवी के अनुसार छोटे बच्चों को जेल के अंदर और बड़ों को बाहर रखकर अपने हृदय पर पत्थर रखकर अपना कर्तव्य निभाए जा रही थी। जेल में कुछ संभ्रात घराणों की स्त्रियां भी कैद थी, जिनके बच्चों के लिए बाहर से भिन्न–भिन्न तरह के स्वादिष्ट खाद्य–पदार्थ, मेवा इत्यादि आता रहता था, किन्तु सुभद्रा जी इतनी तंगी में भी अपने कर्त्तव्य से विमुख नहीं होती थी।

हिन्दी साहित्य जगत् में करुणा व वेदना जैसे सूक्ष्म भावों को अपने अन्तर्मन में आत्मसात् करने वाली छायावादी कवयित्री व लेखिका महादेवी का स्थान चिरविस्मरणीय है। महादेवी छायावादी युग की महान कवयित्री तो हैं ही, उन्होंने इस युग में गद्य-लेखन की विविध विधाओं में उत्कृष्ट प्रतिभा का परिचय देकर इन विधाओं को समृद्ध किया है। उनके द्वारा रचित 'शृंखला की कड़ियां', 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध', अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएं, 'पथ के राही' और 'क्षणदा' आदि गद्य-कृतियां इस युग के चिरस्मरणीय गद्य-ग्रंथ हैं।

महादेवी वर्मा के गद्य-साहित्य के वस्तु-विधान अथवा संवेदना-पक्ष पर दृष्टिपात करें तो उनका विद्रोही स्तर अत्यंत मुखरित होता है। अत्यंत दरिद्र, उपेक्षित, अछूत और कठोर परिश्रम से किसी तरह जीविका के नाम पर एक सूखी रोटी अर्जित कर पाने वालों से लेकर वंचिता, विधवा या परिव्यक्ता नारियों तथा मनुष्य की क्रूरता के शिकार पशु-पक्षी तक महादेवी के गद्य-साहित्य का विषय बने हैं। वस्तुतः महादेवी के समस्त कृतित्व का बीज भाव करूणा है जो कविता में यदि अश्रु रूप में वह है तो गद्य में क्षोभ बनकर आक्रोश एवं व्यंग्य के रूप में प्रस्फुटित हुआ है। वे दुखी प्राणियों के उद्धार के लिए समाज की अवहेलना करके स्वयं उन्हें अपनाती है तथा उनके जीवन को जीने योग्य बनाने का प्रयास करती है।

विविधा रूपा युग जीवन के यथार्थ को अपने साहित्य में समेटने के साथ-साथ चिंतन अथवा विवेचना के धरातल पर महादेवी वर्मा ने साहित्य की समसामयिक प्रवृत्तियों अर्थात् प्रगतिशीलता, यथार्थवाद, गीतिकाव्य, छायावाद और विविध शास्त्रीय समस्याओं यथा काव्य और कला तथा अन्य आध्यात्मिक व दार्शनिक चिंतनों जैसे विज्ञान, जीवन संघर्ष, आनंद, प्रत्यक्ष, परोक्ष आदि से सम्बद्ध प्रश्नों पर विचार-विमर्श किया है। यहां उनकी तथ्यान्वेषिणी प्रवृत्ति कवि की अन्तः प्रतीति के साथ लोक-जीवन का स्पर्श करती है। वे जीवन की मार्मिक अनुभूति के कारण संवेदना और रसात्मक अभिव्यंजना द्वारा अपने दुरूह विषय को भी प्रेषणीय बना देती है। युग के प्रति एक असह्य वेदना एक व्यापक प्रतिक्रिया और विकल मानसिक अशान्ति की अभिव्यक्ति जो काव्य में नहीं हो सकी थी उसके लिए महादेवी जी गद्य का आश्रय लेकर पुनः अवतरित होती है।

महादेवी वर्मा का गद्य-सृजन विषय-वस्तु एवं भाव-सम्पदा की दृष्टि से तो महत्त्वपूर्ण तो है ही शिल्प और संरचना की दृष्टि से भी रचनाकत्री की प्रायोगिक प्रवृत्ति का परिचायक है। उनके गद्य-चित्र विषय-वस्तुओं के बहुरंगी चित्र हैं जो विषम स्थिति का तीक्ष्ण अनुभव कराते हैं और अपने अभिव्यक्ति-कौशल एवं भाव-भंगिमा के द्वारा नूतन शिल्प की सृष्टि करते हैं।

भाषा की दृष्टि से महादेवी वर्मा गद्य में भावानुकूल सक्षम भाषा का निर्माण करती है। हास्य-पूर्ण प्रसंगों में उनका प्रत्येक शब्द-क्रीड़ायुक्त है। भक्तिन के कर्मकांड और दिनचर्या के वर्णन में सरस शब्दावली प्रयुक्त हुई है तो संवेदना की अभिव्यक्ति में वही शब्द अन्तः-कृंदन करते से प्रतीत होते हैं। उनके गद्य की शाब्दिक प्रकृति तत्सम-प्रधान है। उनकी समास-रचना भी संस्कृत पद्धति की है। संस्कृत के साथ-साथ महादेवी अंग्रेजी के आवश्यक

उपयोगी और उचित शब्दों का प्रयोग बेझिझक करती हैं। इनकी कृतियों में ग्रामीण एवं देशज शब्द भी सहज रूप में उपस्थित हुए हैं। भाषागत यह सभी विशेषताएं महादेवी के गद्य-साहित्य की शब्द-सम्पदा को समृद्ध करती हैं।

गद्य-साहित्य में शिल्पकला की दृष्टि से सबसे आकर्षक एवं उत्कृष्ट उपादान उपमान-विधान की सहायता से महादेवी द्वारा कल्पना-चित्रों की बहुरंगी रचना हुई है। उनकी बड़ी विशेषता चित्राधार और चित्र रचना का पूर्ण सामंजस्य है। महादेवी किसी भी व्यक्ति, वस्तुस्थिति, गति, मनः स्थिति को अलग-अलग या संश्लिष्ट रूप में चित्रित करते हुए उसके ठीक समानांतर उचित उपमान-विधान के द्वारा जो अनुभूति प्रेरित कल्पना-चित्र उकेरती है, वह उपमेय को उसकी समग्रता और संश्लिष्टता में साकार ही नहीं करता, उसे रेखांकित करता भी चलता है। इस प्रकार 'महादेवी ने उपमा, रूपक, निदर्शना, उदाहरण और उत्प्रेक्षा जैसे अलंकारों के माध्यम से अपने चित्र-विधान को सुसज्जित किया है। उनका अलंकार-विधान कथ्य को गद्य में सार्थक बनाने में भी अत्यंत सहायक सिद्ध हुआ है। इस प्रकार अलंकार-विधान के माध्यम से वे सहज-सुलभ चित्रों की स्वाभाविक रचना कर लेती हैं।

महादेवी की कल्पना अपने काव्य की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए उचित संदर्भों की खोज में ऐतिहासिक अतीत के पृष्ठ उलटती हुई प्रायः रामायण, महाभारत, पुराण, बौद्ध साहित्य एवं लौकिक संस्कृत की श्रेष्ठ काव्य-कृतियों से पात्रों एवं घटनाओं का चयन करती है। जहां महादेवी के पात्र बहुत हल्के या छोटे हैं वहां पुराणों के भारी-भरकम पात्रों के मेल में उनकी उपस्थिति स्वयं हास्य की सृष्टि में सहायक हुई है। इस प्रकार पौराणिक संदर्भों से भी महादेवी वर्मा के गद्य-साहित्य को विशिष्ट महिमा प्राप्त हुई है।

चित्रभाषा पद्धति को सभी छायावादी कवियों ने अपनी रचनाओं में उत्कृष्टता प्रदान की हैं किंतु गद्य में चित्र-विधान की दृष्टि से महादेवी का योगदान अप्रतिम है। काव्य में अप्रस्तुत को अलंकार के माध्यम से एक शब्द में रखकर प्रस्तुत का चित्र खींचना अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य है किन्तु गद्य में यही कार्य कठिन और दुष्कर है जिसे महादेवी ने बड़ी सहजता और कुशलता के साथ अपने गद्य-साहित्य में कर दिखाया है। महादेवी जी का गद्य-साहित्य उनके काव्य साहित्य की भांति विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण है। उनका गद्य अलंकृत होकर भी सहज, वक्र होकर भी सरल है। उसकी वक्रता और आलंकारिता वक्तव्य और कथ्य को अधिक संवेदनीय बनाने में योगदान देती है। उनके चिंतनमूलक गद्य में भी एक अपूर्व संतुलन दिखाई देता है। शिल्प का प्रत्येक उपादान नपा-तुला, व्यंजक एवं प्रभावपूर्ण रूप में प्रयुक्त हुआ है। गद्य-लेखन में वे अपने कवित्व को छिपाने के प्रयास नहीं करती। उनके विचारों में अध्ययन के साथ-साथ अनुभूति-प्रवणता भी शामिल है। उनके विचारात्मक गद्य में रागात्मक औदात्य एवं गरिमा है तथा स्मृति संदर्भों की रेखाओं में हृदय को आर्द्र कर देने वाली तरलता है। अपने गद्य-साहित्य में वे काव्य रचना की भांति 'स्व' से 'पर' की ओर ऊर्ध्वगमन करके अधिक व्यापक भाव-भूमि की प्रतिष्ठा करती है तथा विश्व की अनेकरूपता के अनुकूल अपनी अभिव्यक्ति को विविधा बनाकर हृदयस्पर्शी कर देती है।

इस प्रकार महादेवी वर्मा का सर्जनात्मक गद्य सहज रूप में आया है। चित्र-विधान हिन्दी गद्य को गद्य की काव्यात्मकता और जातीय स्मृति के अनुकूल अभिव्यक्ति क्षमता दोनों प्रदान करने में सफल हुआ है। महादेवी के गद्य साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता संभवतः यह है कि अपने रचाव में वैयक्तिक होते हुए भी ये रचनाएं पूरी आधुनिक समाज व्यवस्था और उसकी मानसिकता के समक्ष प्रश्न बनकर उपस्थित है। उनके गद्य-साहित्य ने कथ्य और शिल्प दोनों ही स्तर पर विचार एवं भावों का संतुलित समन्वय करके आधुनिक युग की गद्य-विधाओं को समृद्ध किया है तथा प्रयोग के स्तर पर आगामी गद्य-लेखकों के लिए नवीन आयाम उद्घाटित किए है अतः यह कहना सर्वथा उचित है कि मूलतः एक कवयित्री होते हुए भी महादेवी वर्मा एक सफल गद्य-लेखिका हैं।